

संमत्तं



• संमत्तं शब्द •

लौह का ताना

डा० रांगेय राघव

६ भूमिका

प्रस्तुत ग्रंथ में कबीर की भोंकी है ।

वैसे कबीर के जीवन सम्बन्धी तथ्य अधिक नहीं मिलते । मैं उनके साहित्य को पढ़ कर जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ उन्हीं को मैंने उनके जीवन का आधार बनाया है । कबीर पहले निम्नजातीय हिंदू बन कर रहना चाहते थे पर रामानन्द की दीक्षा के बाद वे घात पोंत की श्रोर से संदिग्ध हो गये । वे पहले श्रवतारवाद मानते थे । फिर वे निर्गुण की श्रोर मुझे । फिर योगियों के रहस्यवाद श्रोर पट्ट चक्र साधना आदि की श्रोर । बाद में वे सहज साधना में चमत्कारवाद से आगे बढ़ गये । अन्त में तो वे एक नई भूमि पर पहुँच गये जिसका वर्णन यहाँ मैंने किया है । कबीर को लोगों ने शलत समझा है । कबीर में सूफीमत, वेदांत, रहस्यवाद, नारीनिंदा, तथा अनेक बातें हैं जैसे संसार की असारता पर जोर, मायावाद आदि का वर्णन, पर यह अनेक विकास की मंत्रिलें हैं । वे धीरे धीरे आगे बढ़ गये हैं । वे कितने बढ़ गये थे यह समझना तब श्रौर भी अधिक आश्चर्य देता है जब हम सोचते हैं वे आज से सैकड़ों बरस पहले थे । कबीर के चेलों ने ब्राह्मणों की नकल की । कबीर के विद्रोह श्रौर सत्य को दबा दिया गया । कबीर इतिहास में एक उलभन बन गया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ब्राह्मणवादी आलोचक थे । उन्होंने कबीर को नीरस निर्गुणिया कह दिया । वे कह गये हैं कि कबीर ने कोई राह नहीं दिखाई । कबीर ज्ञान के रहस्य में डुबावा था । साधारण जनता कबीर को समझ नहीं सकी ।

यह सब ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है अतः त्वाज्य है । श्रवैशानिक है ।

कबीर निगुण के परे था। कबीर ने जो राह दिखाई वह मानवता के कल्याण की ओर ले जाने वाली थी। वह भारतीय संस्कृति के नाम पर भेद भाव वाले ब्राह्मणवाद को नहीं मानते थे। वे इस्लाम का विरोध करके भी उससे घृणा नहीं करते थे, और उसे मुक्ति का पथ भी नहीं समझते थे। कबीर ने जनता का दलित जीवन देखा था, तुलसीदास की भाँति नहीं, एक जुलाहे की भाँति। वे सगुण ईश्वर को मानकर ब्राह्मणवाद के नियमों में बंध नहीं सके। पर उनका रहस्य भी ऐसा न था, कि वे संसार को छोड़ देते। घर में पत्नी थी, पुत्र था। पर पत्नी और पुत्र के ही लिये डूबे रह कर दूसरों का गला काटना वे माया कहते थे। कबीर ने कहा कि इंसान को किसी रूढ़ि की जरूरत नहीं, वह ईश्वर के लिये भगड़े, यह व्यर्थ की बात है। ईश्वर रहस्य इसीलिये है कि मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि से उसे जान नहीं सकता, जो जानकार बनते थे उनको उन्होंने भूँठा कहा। कबीर ने ही कहा था कि प्यारे आत्मान की ओर ताकना छोड़ दे। मन की कल्पना और भरमना छोड़ दे।

यह क्या शून्यवादी के शब्द हैं ?

कबीर ने दूसरों के बल पर खानेवाले साधुओं का घोर विरोध किया था। वे तो महनत का खाना चाहते थे। साधारण जनता ने कबीर को समझा था। उसी ने कबीर को मुल्ला, पंडित, जोगी, आदि के पुरोहित वर्ग और सत्ताधारियों से बचाया था। पर बाद में कबीर पंथियों ने कबीर को मिटा दिया। परवर्तीकाल में कबीर को चमत्कारों से ढंक दिया गया।

कबीर ने हिंदू मुसलमान दोनों को नितान्त निम्नजाति के आदमी की आंख से देखा था। पर चेले पढ़े लिखे थे। उस समय मुसलमान शासकों की शक्ति भी बढ़ गई थी। सारी भारतीय जातियों का संगठन हो रहा था। निम्नजातीय जनता के रूप में कबीर के अनुयायी भी दलित थे। शासन मुस्लिम था। अतः इस्लाम पर अत्याचारों के नाम चढ़ते थे। उस समय कबीर पंथ हिंदू मत ही बन गया था।

कबीर ने तो भारत के साँस्कृतिक जन जागरण की नींव डाली है। उसके युग के बंधन थे, और उनकी उस पर छाप है। वह धीरे धीरे विकास करके कितना आगे आ गया था !

माया में उसने प्राणित की। दिल्खुल जन माया बोली। तुलसी की भाँति वक्त वेवक्त संस्कृत की बैसाखियाँ नहीं लगाईं। तुलसी के देवता आखिर संस्कृत बोलते थे। कबीर ने जनता के उपमान लिए और जीवन के अच्छे आचरण पर—सामाजिक आचरण पर जोर दिया। जहाँ तुलसीदास सारे अनाचार की जड़ कलि को मानते थे, कबीरदास कलि का नाम भी नहीं लेते। वे तो मोह-लोभ-दम और धन को ही इस माया और अनाचार का मूल मानते हैं।

कबीर का मुख्य संदेश प्रेम का है।

अब प्रस्तुत पुस्तक के बारे में कुछ और बातें साफ करदूँ।

कबीर पढ़े लिखे न थे। कविता लिखते नहीं थे। वे तो फौरन सुनाने वालों में थे। लोग लिखा करें, उन्हें इससे बहस नहीं थी। वे तो कह देते थे। इसी से मैंने उनकी कविताएँ उनके मुँह से परिस्थितियों के बीच में सुनवाई हैं।

दूसरी बात है कमाल के द्वारा क्या कहलवाना।

कमाल कबीर का पुत्र था। कमाल के बारे में प्रसिद्ध है—

बूढ़ा वंश कबीर का,

जब उपजा पूत कमाल।

परन्तु यह विद्वानों द्वारा कबीर की पंक्ति नहीं मानी गई। कमाल के बारे में किंवदंती है कि कबीर के बाद जब उसने पिता के नाम पर पंथ चालू करने से इंकार कर दिया तो कबीर के चेलों ने उसे ऐसा नाम दे दिया। कबीर की पत्नी लोई थी। कबीर की कविताओं में उसका नाम है।

तथ्यों के अभाव में कबीर के जीवन का पूरा चित्र देने में कमाल ने सहायता दी है। पहले कमाल उपसंहार में अपनी परिस्थिति बताता है। तब कबीर मर चुका है और पंथ बन गया है। 'उपसंहार से पहले' में कबीर की मृत्यु के बाद गुरुओं की कविताओं को सुना कर आपस में लड़ने वाले चेलों का वर्णन है। फिर 'आरम्भ' तक कबीर के विशेष रूप हैं। मरजोवा वाला अप्याय कबीर की महानता, नया पथ और उसके चित्तन को स्पष्ट करने को है। अन्तिम अप्याय में कबीर के जीवन के मोड़ हैं।

कमाल ही बोलता है। मैं नहीं बोलता। अपने युग के बंधनों में रहकर जो कमाल कह सकता है वह कहता है, बाकी मैं भूमिका में कहे दे रहा हूँ। कबीर निरसंदेह तत्कालीन जीवन में क्रान्ति का बीज था। दुर्भाग्य से बाद में फिर वह वर्गसंघर्षों जातिसंघर्षों में दब गया तब वर्गसंघर्ष का मतलब वर्गसंघर्ष ही था।

मेरी अगली जीवनी 'रत्ना की बात' में तुलसीदास का वर्णन होगा, तब कबीर और तुलसी का भेद स्पष्ट नहीं हो जायेगा वरन् भारतीय इतिहास के इस अध्याय पर नया विवेचन भी स्पष्ट ही होगा।

उपसंहार

'मैं कमाल हूँ। मेरे बाप का नाम कबीर था और माँ का नाम लोई था'

'तुम क्या करते हो ?'

'काशी में जुलाहे का काम करता हूँ।'

'फिर यहां क्यों आये हो ? यह तो दरद्वार है !'

'जानता हूँ, लेकिन क्या करूँ ? भटकता फिरता हूँ।'

'क्यों ऐसी क्या मुसीबत आगई तुमको ?'

'मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ?'

'शादी हो गई ?'

'नहीं।'

'तो बताने को बाकी क्या रह गया ! घर में प्रबंध नहीं है तो अपने आप साधु बन जाओगे। लेकिन कबीर का नाम तो हम लोगों ने सुना है। वह तो आदमी साधू या न ?'

'हाँ संत थे, और कवि थे।'

'अच्छा ! कविता भी करता था ?'

'अरे क्या तुम काशी कभी नहीं गए ?'

‘मैं तो और भी ऊपर हृषीकेश में रहता हूँ ।’

‘तुमने उनका नाम नहीं सुना ?’

‘सुना तो सही । पर उधर तो हम परगडों में उसकी तारीफ नहीं है । वह तो मठों और मंदिरों का शत्रु था । हमने तो यही सुना था कि आदमी बड़ा अस्वद और फकड़ था ।’

कमाल हँसा ।

परगडा चौंका । पूछा : ‘क्यों हँसते हो ?’

‘मैं यही तो सोचता था ।’

‘क्या ?’

‘तुम कहते हो वह गद्दीदारों का दुश्मन था । ठीक यही न ?’

‘हाँ हाँ ।’

‘और जानते हो, काशी में उनके चेलों ने क्या किया है ?’

‘नहीं ।’

‘उन्होंने कबीर के नाम पर ही पंथ चला दिया है, गद्दी लगा बैठे हैं ।’

कमाल फिर हँसा, उसकी अवाज में व्यंग और विक्षोभ था । परगडा कुछ ताज्जुब में आगया ।

कमाल ने फिर कहा : ‘जानते हो उन्होंने मुझसे क्या कहा ?’

‘क्या कहा ?’

‘कहने लगे कबीर का वेटा कमाल ही लायक आदमी है । वही कबीर साहब की जगह अब उनके मंत्र का प्रचार कर सकता है ।’

‘कैसा मंत्र ?’ परगडा ने पूछा, ‘मंत्र का अधिकार तो ब्राह्मण को है !’

‘तो तुम्हारी मंत्र परम्परा तुम्हें ही मुबारक हो पण्डित ! मेरा बाप तो कभी इन चीजों से प्रभावित नहीं हुआ और फिर मैं कैसे होता !’

‘क्यों नहीं, आखिर तो बाप का ही वेटा ठहरा !’

मैंने कहा—‘नहीं बाबा ! मुझे गद्दी नहीं चाहिये । मेरा बाप गद्दी धारियों के ही खिलाफ तो जन्म जिन्दगी लड़ता रहा ।’

‘अरे तुम जुलाहे हो ! तुम्हारी बयणजीवी जातियाँ पंजाब से लेकर बंगाल तक धीरे धीरे मुसलमान हो गई हैं ।’

‘क्यों न हों ? परिदृष्ट ! क्या कोई बुरा काम करते हैं जुलाहे ! तुम ने उन्हें नीचा समझा तो वे क्या करते ?’

‘श्ररे तुम शाक्त, वाममार्गी, देवीपूजक ! ब्राह्मणों के पुराने विरोधी !! मुसलमान न होओगे तो क्या करोगे ?’

‘मैं एक बात पूछूँ परिदृष्ट !’

‘पूछो !’

‘बताओ ! हिंदुओं में जो नीचे हैं, पर मुसलमान नहीं हुए, वे कहाँ रहे ?’

‘तो जो मुसलमान हो गये वे ?’

‘वे धर्म नाश करके म्लेच्छों के, यवनों के दास बन गये, उन्होंने तो अपने यह लोक और वह लोक दोनों बिगाड़ लिये !’

फमाल ने कहा: ‘यही मेरे पिता कहते थे । वे कहते थे कि भाइयो ! तुम नीचे माने जाते हो । हिंदू अपने देश के वासी हैं । वे तुम्हें नीच मानते हैं । मुसलमान शासक परदेशी हैं । अगर वे तुम्हें मुसलमान बनाते हैं और तुम मुसलमान बन कर अपने को आजाद समझने लगते हो, तो क्या उससे समस्या का हल हो जाता है ?’

‘क्या मतलब ?’

‘श्ररे यह तो साफ है । मान लो मैं जो जुलाहा हूँ हिंदुओं में नीच माना जाता हूँ । अगर मैं मुसलमान हो जाता हूँ तो हिंदू मुझे बात बात में दबा नहीं सकते, लेकिन फिर भी आदमी आदमी के बीच दरार बढ़ती चली जाती है ।’

‘कैसी दरार ? यह दरार आब की है ? सनातन काल से भगवान ने यह दरार बना रखी है रे जुलाहे !’

‘भगवान ने कि आदमी ने ?’

‘आदमी ! आदमी क्या होता है ? आदमी तो निमित्त है, जो होता है वह अणल में उसी की इच्छा है ।’

‘लेकिन मेरे पिता कहते थे.....’

‘श्ररे तेरे पिता कहते थे !! उसने शर्द्रों और जुलाहे कोलियों की भीड़ शकट्टी करली, वना जुलाहे का क्या कहना, क्या न कहना । हिश । क्या समय

आ गया है। प्रभु ! कैसा कलि का प्रकोप है ! अभी तक वे नाथ जोगी थे, उनकी मुसीबत थी, अब यह एक नयी परेशानी खड़ी हो गई। क्यों रे ! तेरा बाप सहज यानी था ?

‘नहीं !’

‘तो ?’

‘वह आदमी था !’

‘यानी बाकी सब जानवर हैं ?’

‘यह तो मैंने नहीं कहा !’

‘तो फिर तेरा मतलब क्या था ?’

मैं तो सिर्फ यही समझा हूँ कि बाकी सब लोग जात पाँत, धर्म भेद और संप्रदायों में बँटे हुए हैं। किसी पुरानी विरासत से बँधे हुए हैं। मेरा बाप कहता था कि इन सब बंधनों से परे भी एक सत्य है।

‘वह क्या है ?’

‘मनुष्यत्व !’

‘तो तेरे बाप का अर्थ था कि यह पवित्र भारत भूमि, यह देव भाषा, यह भव्य मंदिर, यह प्राचीन मर्यादा, सबको छोड़कर मुसलमान बन जाया जाये ?’

‘नहीं !’

‘तो ?’

‘उनका कहना था कि जिस तरह हिंदू अपने भेद भावों में फँसे हुए हैं, उसी तरह मुसलमान भी अपने दूसरे टंग के घमंड में चूर हो रहे हैं। इन दोनों को असली मर्म नहीं मालूम !’

‘वह तो सिर्फ तेरे बाप को मालूम था ! उसका मतलब यह कि मुसलमान आते हैं, आ जाने दो। ठीक ही तो है। जुलाहे का क्या जायेगा ? जुलाहा कभी राजा तो बनेगा नहीं। अरे जो कुलीन हैं, जो अधिकारी हैं, उनकी क्या परिस्थिति होगी ?’

कमाल मुस्कराया।

‘क्यों हँसता है रे जुलाहे ?’

‘परिडत ! ठीक बात है। मेरा बाप यही कहता था !’

‘क्या कहता था !’

‘यही कि जिनकी जात नीच है उनके लिये यह ब्राह्मण और यह मुल्ला दोनों समान हैं। वे हिंदू समाज के जात पाँत के भेद को देख कर फूट डाल कर अपने फायदे के लिये लोगों को मुसलमान बना कर उसका इस्तेमाल करते हैं, और इस तरह संस्कृति और धर्म की रक्षा के नाम पर, नीचों को ऊपर उठाने के अहंकार के नाम पर, हिंसा पलती है, धृष्टा बढ़ती है। वह मनुष्य को फिर जातियों में बाँटती है और छुआछूत बढ़ती है।’

‘अरे जा जा जुलाहे के निखट्टू पूत ! तेरी ये मजाल कि हम ब्राह्मणों को तू सबक देने लगा ! प्रभु ! इस कल में क्या क्या नहीं होगा !’

‘महाराज ! व्याकुल न हों, मैं स्वयं चला जाता हूँ !’

‘अरे अब तू जाकर भी क्या करेगा जुलाहे ! तेरा थाप तो सत्यानास के बीज बो गया ! क्यों रे ! मैं पूछता हूँ काशी में क्या धरम नहीं रहा ! इतने इतने दिग्गज विद्वान बहाँ रहते हैं। उन्होंने नहीं रोका उसे !’

‘उसे किसने नहीं रोका ब्राह्मण देवता ! उसे मुल्तान लोदी ने रोका, मुल्लाओं ने रोका, महंतों, मठाधीशों और परिदत्तों ने रोका, उसे पेशेवर साधुओं और संन्यासियों ने रोका, उसे नाथ जोगियों ने घोल कर समाप्त कर देने की चेष्टा की, उसे सूफियों ने अपने संप्रदाय में मिलाकर मिटा देने की कोशिश की, लेकिन वह !! वह नहीं मिटा। न मुल्तान की तलवार उसे काट सकी, न मुल्लाओं के फतवे उसका सिर झुका सके। महंतों, मठाधीशों और परिदत्तों की जीभ उसके सामने लड़खड़ा गईं। उसने मुफ्तखोर साधुओं को बताया कि जिंदा रहते हो तो हाथ पैरों से कमा कर खाओ, उसने नाथ जोगियों से कहा कि नहीं खी पाप नहीं है, वह पृथित नहीं हैं, उसने सूफियों के उस छद्मवेश को प्रकट कर दिया जिसकी आड़ में वे इस्लाम का प्रचार किया करते थे। वह मेरा थाप कबीर था !’

‘अरे तेरा न था तो क्या मेरा था। तू तो ऐसा खुश होरहा है जैसे जैन अपने तोर्यङ्कर की याद कर के मगन हो जाते हैं !’

‘यही तो मुझे साले डालता है।

‘क्या मला !’

‘कबीर के चेले, कबीर की हत्या कर रहे हैं ।’

‘सो क्यों ?’

‘वे कबीर को अवतार बनाने की ही कोशिश कर रहे हैं और भूँटे चमत्कारों को दर्ज कर करके वे कबीर को गिराने की कोशिश कर रहे हैं । वे बड़प्पन की एक ही कल्पना करते हैं । जो आज बड़े कहलाते हैं उनकी नकल कर के उन जैसा हो जाना ही उनकी दृष्टि में महानता है, जब कि ये बड़े कहलाने वाले, उनके बड़प्पन के ढंग, यह सब बहुत छोटे हैं...सब बेकार हैं.....’

‘अरे चल चल...सिर पर ही चढ़ा जाता है । दूर होजा मेरी आँखों के सामने से । हँसता है ? कमबख्त ! दूर होजा ।’

‘हँसता हूँ तुम्हारा छोटापन देखकर परिइत ! यह सब कुछ बदल जायेगा, सब कुछ बदल जायेगा । यह सब छोटे सत्य हैं । अविनाशी अव्यक्त पुरुष का सत्य इन सब से परे है । उसका तत्त्व समझना मनष्य के लिये कठिन है, क्योंकि वह अपनी ही रूढ़ियों में बंधा हुआ है । उसको ही माया, और अहंकार ने बाँध रखा है । मैं स्वयं चला जाता हूँ । जहाँ जहाँ भी मैं जाऊँगा यही कहता फिरूँगा । मैं चला जाऊँगा, पर मेरा एक गीत सुनलो ब्राह्मण देवता ।’

‘नहीं मुझे नहीं सुनना है कुछ !’

‘अच्छा मैं जाता हूँ, गाता जाऊँगा, जो सुन सको वह यहीं बैठे बैठे सुन लेना ।’

कमाल बाँहर आगया और गाने लगा—

सुनता नहीं धुन की खबर
 अनहद बाजा वाजता ।
 रस मंद मंदिर गाजता
 बाहर सुने तो क्या हुआ ॥
 गाँजा अफीमो पोस्त
 भाँग श्री शराबें पीवता,
 इक प्रेमरस चाखा नहीं
 अमली हुआ तो क्या हुआ ॥

कासी गया श्री' द्वारका
 तीरथ सकल भरमत फिरै
 गाँठी न खोली कपट की
 तीरथ गया तो क्या हुआ ॥
 पोथी कितायें बाँचता
 श्रीरों को नित समभावता
 त्रिकुटी महल खोजे नहीं
 बफ बफ मरा तो क्या हुआ ।
 काजी कितायें खोजता
 करता नसीहत श्रीर को
 महरमऊँ नहीं उस हाल से
 काजी हुआ तो क्या हुआ ॥
 सतरंज चौपड़ गंजिफा
 इक नर्द^X है वदरंग की
 बाजी न लाई प्रेम की
 खेला जुआ तो क्या हुआ ॥
 जोगी दिगंबर से बड़ा
 कपड़ा रंगे रंग लाल से
 वाकिफ नहीं उस रंग से
 कपड़ा रंगे से क्या हुआ ॥
 मंदिर झरोखे रावटी
 गुल चमन में रहते सदा
 कहते कबीरा हैं सही
 घट घट में साहब रम रहा ॥
 सुनता नहीं! धुन की खबर
 अनहद वाज वाजता ॥

संगीत दूर होता चला गया ।

● परिचित X निराकार ।

उपसंहार से पहले

बलूचिस्तान हिंगलाज में देवी मंदिर के बाहर दो आदमी बातें कर रहे थे।

‘तुम कहाँ जाओगे ?’

‘मैं बड़ी ज्वालामुखी तक यात्रा करने जाऊंगा।’

‘वह तो ईरान के भी पार है न ?’

‘हाँ कोहकाफ के पास है।’

‘कोहकाफ ! वहाँ की तो परियाँ प्रसिद्ध हैं ?’

‘मैं वाममार्गी नहीं हूँ। मुझे परियों से क्या काम ?’

‘स्त्री से काम सदा ही पढ़ना चाहिये,’ पहले वाले ने कहा और कहते हुए मुस्कराया।

इसी समय घोड़े पर सवार एक आदमी आकर वहाँ उतरा। उसने मुँह पर साफे का छोर ऐसे बाँध रखा था कि ढाटा सा लगता था।

‘अरे कौन है भाई ?’

‘मुझे नहीं पहचाना ?’ कह कर उसने ढाटा खोल दिया।

‘अरे !’ पहला वाला आदमी हर्ष से उठ सड़ा हुआ । ‘जोगी कमलू !
तुम कब आये ?’

‘आया हूँ यह तो देख ही रहे हो । पर तुम्हारी यद धूल बला-की मुची-
बत हो गई ।’

‘आओ आओ ! काशी होके आया है तो आदमी ही न रहा-!’ पहले
वाले ने कहा ।

‘उज्ज्वलनाथ !’ आगन्तुक ने बैठते हुए कहा—‘तुम नहीं-समझोगे-। मैं
बो देखकर आया हूँ यह तुम्हें आखिर मुनाऊँ तो कैसे ?’

‘अरे मुनाते रहना, पहले गाँवा तो पियो । इधर तो मैंने ऐसी आदत
हाल ली है कि हाथ भर ऊँची भल्ल उठा देता हूँ ।’

वह अपने उस्तरे से मुँहे सिर पर हाथ फेरकर मुस्कराया और उसने उठने
की मुद्रा में देखा ।

जोगी कमलू ने गले में पड़ी मालाओं के गुरियों को उंगलियों से सुल-
भाया और ठोड़ी पर लटकती दाढ़ी को खुजाकर धीरे से कहा : ‘मैं गाँवा
नहीं बीता ।’

उज्ज्वलनाथ चौंक उठा । कहा : ‘क्यों ! क्या तू अब वैष्णव होगया !’

‘नहीं ।’

‘तो ?’

‘उज्ज्वलनाथ ! जिसे हम सब कुछ समझते हैं, वह तो कुछ भी नहीं है ।’

उज्ज्वलनाथ नहीं समझा । कोइकाफू जाने वाले यात्री ने कहा : ‘मेरा
नाम हरनाथ है । मैं जात का हाड़ीमारंग हूँ । बंगाल का वासी हूँ । तुम क्या
कहते हो ?’

‘तुम्हें यहाँ आये कितने दिन हुए !’ जोगी कमलू ने पूछा ।

‘यहाँ तो मैं सात दिन पहले आया था । पर बंगाल छोड़े मुझे सात
बरस हो गये ।’

‘फिर काशी से कब आये ?’

‘समझ लो चार पाँच बरस बीत गये । काशी से मथुरा गया था । वहाँ
बादशाह सिकंदर लोदी की पचीस एक कोस पर लड़ाई होरही थी । बदलगढ़

के चँदवार ठाकुरों से घमासान हो रही थी। मैं फिर जालन्धर चला गया। पठानकोट होता हुआ यहाँ आ गया हूँ।

‘तभी तुम नहीं जानते।’

‘क्यों, गोपीचन्द्र के मठ की तरफ इधर से मैं सिंध जा सकता हूँ न?’

‘तुम तो कोहकाफ़ जा रहे थे?’ उज्ज्वलनाथ ने कहा।

‘अरे तो घूम कर चला जाऊँगा।’ हरनाथ ने कहा। ‘तुम कहो, तुम काशी में क्या देख आये हो?’

जोगी कमलू कुछ देर चुप रहा। फिर कहा : ‘सतगुरु कबीर साहेब का स्वर्गवास हो गया।’

‘कीन ? मैंने भी यह नाम सुना तो है। मुझे चित्तौड़ में कुछ जोगियों ने उसके बारे में बताया था।’

‘उसके उसके क्या करते हो जी। तुम्हें इज्जत से बोलना नहीं आता।’

‘हाँ, हाँ, अपनी बात तो यही है भाई। अभी कुछ दिनों पहले एक आई पंथी मैरों का चोला चढ़ाये हाथ में अग्यारी लिये मिला था, वह कहने लगा कि गुरु दत्तात्रेय और गुरु गोरखनाथ के बीच में आई महाराज का श्रौतार हुआ। कहने लगा वह बढ़ा पहुँचा हुआ था। तुम भी उसी की सी बातें करते हो?’

‘नहीं, नहीं, मैं वह सब नहीं कहता। मैं तो सत् गुरु कबीर साहेब की बात कहता था।’

‘श्रलल निरंजन!’ हरनाथ ने कहा—‘आदेश ! आदेश !’

उज्ज्वलनाथ ने चिलम में गाँजा भरते हुए कहा : ‘जय गुरु गोरखनाथ ! अरे कमलू तूने बताया नहीं, कि कबीर साहेब के मरने की ऐसी कीन सी बात है आखिर ! देख --

इक लाल पटा एक सेत पटा

इक तिलक जनेऊ लमक जटा

जब नहीं ऊलटी प्राण पटा
तब छोड़ जाइगे सटा पटा ।

धोल ! मुना !'

'वाह वाह !' हरनाथ ने कहा—'चरपट नाथ तो चरपटनाथ ही थे । पर
गुरु गोरखनाथ कह गये हैं—

भावै संगें जाइ अकेला
तायें गोरप राम रमेला ।

काया हंस संग हूँ आवा
जाता जोगी किनहूँ न पावा ॥

जीवत जगमें मूवां मसांएँ
प्राण पुरिस कत कीया पर्याण !

जांमण मरणां बहुरि विओगी
तायें गोरप भैला जोगी ॥

कमलू जोगी इस समय मग्न सा होकर उठा श्रीर नाच नाच कर गाने
लगा—

सुगवा पिजरवा छोरि भागा
इस पिजरे में दस दरवाजा ।

दस दरवाजे किवरवा लाग़ा
अखियन सेती नीर बहन लाम्यो ॥

अब कस नाहि तू बोलत अभागा
कहत कबीर सुनो भई साधो ।

उड़िगो हंस दूटि गयो तागा
सुगवा पिजरवा छोरि भागा ॥

हरनाथ और ठग्नकनाथ आश्चर्य से देखने लगे । हरनाथ ने कहा :
'जोगी !'

परन्तु कमलू मुस्त था । उसने कहा : 'जोगी ! जानते हो ! सद्गुरु ने
घरती को पाप से उबार लिया । वे बड़े पहुँचे हुए थे । उनका सा तो कोई
हुआ ही नहीं ।'

‘क्या कहते हो ?’ हरनाथ ने काटा—‘गुरु गोरखनाथ श्रमर हैं । वे मुनेंगे तो अवश्य दख देंगे ।’

‘देंगे तो सद्गुरु इस दीन की रक्षा करेंगे ।’ कमलू ने कहा ।

‘तुम गुरुगोरप पर संदेह करते हो ?’ उज्जकनाथ ने कहा—‘श्रेः सुनो—

ॐ आदेस अलख अतीतं

तदा न होती धरती न आकासं ।

तदा काले सिंभू भई हमारी उतपन्य ।

माता न लेवी दस मास भारं

पिता न करिवा आचार विचारं

जोनी न आयवा, नामि न कटाइवा

पुस्तग पोथी ब्रह्मा न वजायवा ।

तहाँ अलेप पुर पटणि अनोपम

सिला तहाँ बैठे गोरपराई ।

तुम दमड़ी चमड़ी का संग्रह करी

गुरु का सबद ले ले दोजिम भरौ ॥

गुप्ती चक्र चलावीं हथियार

पंडित बुधि बहीत अहंकार ।

ऊभा ते सिध बैठ तै पापांण

श्री गोरख वाचा परवांण ।

अनन्त सिधां में रह रासि कही

गोदावरी कै मलें ऐसी भई ॥”

‘अहाहा,’ हरनाथ ने चिमटा बजाते हुए दाद दी ।

कमलू जोगी ने झूम कर गाया :

‘धुँधमई का मेला नाहीं,

नाहीं गुरु, नाहिं चेला

सकल पसारा जेहि दिन मांही

जेहि दिन पुरुष अकेला ।

रमैया की दुलहिन लूटा वजार ।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा
तीन लोक मचा हाहाकार ।

ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे
नारद मुनि के परी पिछार ।

स्त्रिगी की मिगी करि डारी
पारासर के उदर विदार ।

कनफूँका चिदकासी लूटे,
लूटे जोगेसर करत दिचार ।

हम तो वचिगे साहब दया से
सब्द डोर गहि उतरे पार ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो
इस ठगिनी से रहो हुसिआर !

रमैया की दुलहिन लूटा वजार !

गाते गाते कमलू अपने को भूल गया ।

संप्या गहरी हो गई थी । घोड़ा दिनदिना उठा । कमलू उठ खड़ा हुआ
और उसने घोंड़े की पीठ पर हाथ फेर कर कहा—वह सचमुच गुरु था । वह
सचमुच गुरु था ।

और उसका गला हँच गया । उसे कबीर साहेब के अन्तिम दर्शन याद
आ रहे थे और फिर उसके होठों से हल्का सा शब्द निकला—सद्गुरु,
सद्गुरु.....

रात और उतर आई ।

हो गया

कमाल ही हूँ। मैं उस दृश्य को भूल जाना चाहता हूँ परंतु भूल नहीं
। क्या करूँ ?

पिता ने अपने सफेद केशों पर हाथ फेर कहा : 'बेटा कमाल !'
मैंने कहा : 'दादा तुम थक गये होगे। कब तक बुनते रहोगे ? क्या तु-

मुझ पर अपना भार एक दिन भी नहीं छोड़ सकते ?'
भाँपड़े में निस्तब्धता थी। पिता ने करुणा भरी आँखों से देख कर कहा
था : 'बेटा ! जब तक आदमी जिये, उसे काम करना चाहिये। अपने पेट के
लिये काम करना तो जरूरी है। हाथ पाँव काम करते रहते हैं तो चलते रहते
है, उन्हें हराम के खाने की आदत नहीं डालनी चाहिये।'
'थोड़ा आराम करलो दादा !' मैंने फिर कहा था। उन्होंने कहा : 'बेटा

तू नहीं मानता तो यही सही।'

मैंने उन्हें खाट पर लिटा दिया था। उनका शरीर पतला दुबला था।
मूँछें सफेद थीं। पाँच दिन की बढ़ी हुई सफेद बालों वाली दाढ़ी बड़ी
अच्छी मी लग रही थी। वे तब सौ से ऊपर थे। मैं बुनता रहा। उस समय

उन्होंने कहा : कमाल ।

'हाँ दादा ।'

'बेटा तू डरता है ?'

'किससे ? दादा ?'

'भीत से ?'

मैं डर गया था । पूछा था : 'देखा क्यों कहते हो ? मैं तो डर रहा था, उसी दिन से डर रहा था जिस दिन तुमने भरी सभा में कहा था कि अगर काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है, तो तुम्हें वह स्वर्ग नहीं चाहिये । तुमने कहा था कि मगहर ही में मरूँगा, भले ही मर कर गदहे का जन्म लेना पड़े ।'

'तू इस सबमें विश्वास करता है बेटा,' उन्होंने लेटे लेटे कहा था 'बुद्धि से सोच कर देख । तू ही बता । काशी शहर महादेव की है, और महादेव सर्व व्यापी है, तो मगहर क्या महादेव का नहीं है ?'

'क्यों नहीं होगा ?'

'फिर एक स्थान में मुख्य क्यों, दूसरे में ग्नर क्यों ?'

'ठीक तो है दादा ! यह तो गलत है ।'

'काशी के पण्डे लोग इस तरह बचर करके यहाँ आकर मरने वालों की संख्या बढ़ाते हैं और खूब धन कमाते हैं, इसके अतिरिक्त इसमें कोई सत्य नहीं है ।'

'जाने दो दादा ।' मैंने कहा था—और फिर काम में लग गया था । कुछ देर बाद पिता ने कहा था : 'कमाल बेटा !'

'हाँ दादा ।'

'आज काम बन्द कर दे ।'

'क्यों दादा !'

'बेटा श्रम में जा रहा है ?'

'कहाँ ?'

'वहाँ जहाँ सब ही एक जिन जिन जाते हैं, और वहाँ से सब लौट कर नहीं आते !'

क्या करने हो दादा ! क्यों तुम्हें बात मुँह से निकालते हो । मेरा तो मन संसार में तुम्हारे गिराव को देखे नहीं है ?

‘इस संसार में कोई समाप्तन होकर नहीं जाता पुत्र ! सब आते हैं सब चले जाते हैं । नाम और शब्द दोनों का नाश हो जाता है । कपटी और पत्यवर्दी दोनों ही चले जाते हैं । पुण्य और निर्युग को पहँचान करने वाले, पारी, और पुनःपन्ना कोई भी अमर नहीं होता । अग्नि पवन और पानी, यह सृष्टि, यहाँ तक कि विष्णुलोक भी प्रलय की छाया में विनष्ट हो जाता है । नाया मत्स्वरूप धारण करती है, यह छोड़ करता है, हरिहर ब्रह्मा भी जिससे नहीं बच सकते, उससे मनुष्य कैसे पार पा सकता है ? राम और लक्ष्मण चले गये । कितु सीता को संग नहीं ले जा सके । कीरवों को जाते हुए देर नहीं लगी पुत्र । धारा नगरी को सुशोभित करने वाले भोज से भी नहीं रखा गया । शरद्वन चले गये, कुन्ती जैसी रानी चली गई, सुबुद्धि का भण्डार सहदेव भी चला गया । चलती बार कोई कुल भी तो नहीं ले जा सका । मूर्ख मनुष्य ही बहुत कुल संचय करता है । अपनी-अपनी फर के सब चले गये, किसी के हाथ कुल नहीं लगा । रावण भी अपनी फर गया, और दशरथ का वेदा राम भी अपनी फरके चला गया ।’

मैं तुम्हारा रहा । मुझे लगा इतिहास के विराट प्रकरण मेरी आँखों के लक्ष्मण से जा रहे थे । मैंने देखा विकराल काल सब को लाये जा रहा था । क्यों सब कुल नष्ट हो जाता है । फिर इस संसार में तत्व ही क्या है ?

मैंने कहा—‘दादा ! सब कुल नष्ट हो रहा है । फिर यह परिवार क्या है ? यह क्या बंधन नहीं है । तुम बता सकते हो मुझे तुम्हारे बिना कितना दुख होगा ?’

रहेगा। यह सब लोग अपने अपने निरुत्तर बड़ बिरादों में बँधे हुए हैं।

मैं रो पड़ा। मैंने कहा : 'मिटा क्या मनुष्य का हृदय डूब नहीं है ! क्या उसे रोना नहीं आयेगा ?'

पिता ने धीरे से कहा : 'पुत्र ! संसार में कौं के साथ रहना पार नहीं है, वह तो सृष्टि का शत्रु है। संसार को पाटना माना नहीं है। क्रिष्ण जो संतान और गौरी से अपना सम्बन्ध अटूट चाँदना है वही मूला हुआ है। सृष्टि का काम है सब आता है, सब निवृत्त होता है। प्रकृति के नियम को देखकर दुःख करना मनुष्य का अज्ञान ही होता है। यह अज्ञान ही मनुष्य को अज्ञान घेरना देता है।'

पिता खुश हो गये। मैंने उनके पाँव चूँके और कहा : 'पाँव यह संसार व्यर्थ ही है तो इसके तिरके इतने हाहाकार क्यों ?'

'हाहाकारों का मनुष्य ने निर्माण किया है पुत्र !' मिटा ने सोचते हुए कहा, 'सृष्टि ने मृत्यु दी है, तो जन्म भी दिया है। मृत्यु में बढ़ाकर दूसरे को घटाना ठीक नहीं है। पण्डु मृत्यु जीवन के साथ अक्षय्य है और स्मृति संसार के लोग अपने कुछ व्यक्तित्व जीवन को अन्त अन्त करते हैं उसको चिन्ता कर याद दिलाना पड़ता है।'

पिता ने कहा : 'पुत्र ! माता पिता जन्म देकर बालक को अपना बड़ का स्वार्थ से पालते हैं। बाधिन रूप धारण करते उसे आनिती माँ सेना चारणी है। पुत्र कलत्र विचारों की तरह मुँह चाँदे मड़े मूँते हैं। कौआ और गिद्ध दोनों ठसरी मृत्यु चाँदते हैं। स्याह और कुत्ता उलकी गद्द देगते हैं। पत्नी कहती है यह मुझे मिल जाये। पवन कहता है मैं उड़ा ले जाऊँगा। अग्नि कहती है मैं इस शरीर को जलाऊँगी। श्वान कहता है इसके जल जानें पर मैं इसका उठार करूँगा। जो केवल विषयों में भूले मूँते हैं उनके विषय मैं यह बात कहता हूँ। मेरा मेरा कह कर स्वार्थ में भूले हुए लोग छूटपटाने हैं। मनुष्य की पवित्रा उता हरि स्मरण के लिये मिली है। हरि क्या है कमाल। वह सृष्टि का अज्ञात महान रहस्य, जो मूलतः आत्मीक है, प्रेम है, महज है, उलकी अनुभूति यह मनुष्य ही तो प्राप्त कर सकता है।'

मैंने देखा धीरे-धीरे धुँधलका छाने लगा था। पिता गुनगुनाने लगे—

भूला लोग कहै घर मेरा
 जा घरवा में फूला डोलै
 सो घर नाहीं तेरा,
 हाथी घोड़ा बैल वहाना
 संग्रह कियो घनेरा
 वस्ती में से दियो खदेरा
 जंगल कियो वसेरा ॥
 गांठी बांधी खरच न पठयो
 बहुरि कियो नहीं फेरा
 वीवी बाहर हरम महल में
 बीच मियां का डेरा
 नौ मन सूत अरुभि नहिं सूझै
 जनम जनम अरुभेरा,
 कहत कवीर सुनो हो संतों
 यह पद करो निवेरा ।

मैंने सुना तो मेरी वेदना अपने आप स्थिर हो गई । वह उतरता अंधेरा ।
 पिता के चरणों पर मेरे भय का अन्त हो गया । वह मेरा पिता था । जिसने
 मुझको पाला पोसा, वहीं तो मेरे जीवन का शाश्वत अभय था । उसके ही
 सहारे से मैं अपने को पूर्ण समझता था । किंतु पिता की इस वाणी ने बताया
 कि सृष्टि के क्रम में सबका ही नियंत्रण है । जिसको मनुष्य अपने सीमित
 सामान्य साधनों से काट नहीं सकता । और मुझे पिता के वे पहले शब्द
 याद आने लगे—इस संसार में जिसे देखा दुखी ही देखा । तन धारण
 करके किसी ने भी सुख नहीं पाया । मैं उदय अस्त की बात करता हूँ, तुम
 इसे विवेक से सुन कर विवेचन करो । इस पथ पर सब ही दुखिया हैं, गृहस्थ
 या वैरागी, जोगी, जंगम, सब ही को दुख है और तापस को तो दूना दुख है ।
 मैंने दुहराया—तापस को तो दूना दुख है । तपस्वी को ? दूना ??
 भ्रोंपड़े की नीरवता अब गहरी हो गई थी । पिता को जैसे अब मेरी याद
 नहीं थी । वे अपने गहरे सोच में पड़ गये थे ।

मैंने उठ कर दीपक जला दिया। उसका हल्का प्रकाश भोंपड़े की भीतों पर कांपने लगा और वह मुझे उस समय अच्छा लगा। उसमें कितनी सात्वता थी। वे लाट पर सीधे लेटे थे। उनका चांदा और दीप्त भाल दिखता था, और मैं सोच रहा था। यही है वह माथा जिसने हजारों आदिमियों को हिला दिया था। यह गरीब पैदा हुआ था। आज भी गरीब था। जीवन भर मेहनत कर के इसने कमाई की और कितना शांत, कितनी पवित्र होकर लेटा हुआ है यह? मैं सोचने लगा, हम सब आत्मा को मानते हैं। पिता भी सम्भते हैं कि यह एक विरानी वस्तु है जो पाँच तत्व के इस पित्रे में आती है और अनदेखे ही चली जाती है और यह देह बिना पानी के ही डूब जाती है। राजा, रानी, अभिमानी चले जाते हैं। मुझे गीता की बात जो मैंने साधुओं की रम्यत में सुनी थी याद आने लगी—वह आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है, वह अमर है। जैसे पुराने वस्त्र छोड़ कर मनुष्य नये वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे ही एक चोला छोड़ कर वह दूसरे शरीर का चोला धारण कर लेती है। यहाँ जोग करने वाले जोगी और कथा सुनने वाले भोगी चले जाते हैं।

फिर पिता के शब्द आये। उन्होंने कहा था—यह तो पाप पुण्य की हाट लगी हुई है। परम यहाँ दृष्ट लेकर दरबानी करता है। केवल भक्ति रखने वाला ही अपनी मति को स्थिर रखने में समर्थ होने पर काल से पराजित नहीं होता।

यह सत्ता महासमुद्र में उठी हुई एक लहर के समान है जो उठती है और फिर लय हो जाती है।

और अभी मैं सोच रहा था कि मुझे एक विभोर किंतु पराभूत सी चेतना की अनुभूति मिली।

मैंने मुना के अत्यन्त गम्भीर और सयत स्वर से गा रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ।

परंतु मैंने देखा वे मुस्करा रहे थे और उनकी आँखें अब दीपक की रोशनी को देख रही थीं। उस वक्त मुझे लगा जैसे दीपशिला स्थिर होगई थी। भोंपड़े में एक नयी आभा फैल रही थी। और शब्द मेरे कानों में पड़ने लगे—

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो
चंदन काठ कै बनत खटोलना
तापर दुलहन सूतल हो ।

मैंने अपनी चेतना में देखा और वह कल्पना मेरी सीमाओं को तोड़ने लगी । मुझे लगा मैं किसी इतने महान व्यक्ति के पास था कि मुझे आश्चर्य हुआ । और संसार ? संसार उनसे डरता था, घृणा करता था । लोग उन्हें दार्शनिक कहते थे । मैं देख रहा था कि वह आदमी, उस आदमी का हृदय, उस आदमी की चेतना, यह सब कितने अधिक कोमल थे !

वह मेरे पास भी थे, फिर भी मुझे लग रहा था कि जितना ही मैं हाथ पसारता हूँ, उतने ही वे मुझसे दूर हो जाते थे । उस क्षण मुझे लगा मैं वहाँ अपने लिये नहीं, उनके लिये हूँ । किसी का आलोक या महानता अपने आप में पूर्ण नहीं हैं । उनका बड़प्पन या अन्धकार मिटाने की शक्ति को दिखाने के लिये उनकी तुलना की एक वस्तु उनके सामने रहनी ही चाहिये । ऐसा ही मैं कमाल हूँ, जो भाग्य से कबीर जैसी महान् आत्मा के पास आगया हूँ । क्या है यह मेरी सत्ता, कुछ नहीं । बल्कि मुझे लगा कि इस अधमुँदे नयनों वाले महाकवि के लेटे हुए शरीर के सामने मैं जो चलते फिरते होने के कारण, यों अपने को नायक समझ रहा हूँ, वह मेरी भूल ही है । नायक तो लेटा है । मैं जो कुछ हूँ उसके कारण हूँ ।

और तब आत्मा की अनुहार का लरजता स्वर मुझे सुनाई दिया :

उठो सखी मोर मांग सँवारो

दुलहा मोसे रूसल हो ।

वह रूठना कितना मधुर था । मैं तन्मय हो गया । एक विशाल जीवन अपने अन्तिम क्षण में आत्म यातना को प्रेम की सरस अनुभूति में भिगोकर संसार को दिये जा रहा था । अनंत था वह जीवन का अभिनय, कितनी मादकता थी इसमें !

और पिता का स्वर सुनाई दिया—

आए जमराज पलँग चढ़ि बैठे

नैनन आंसू टूटल हो ।

मैं चीँक उठा । यमराज !!

पिता ! वे जा रहे हैं !!

और मैं लड़ा-खड़ा भूल गया हूँ !

आखिर क्यों ?

क्या यह ममता से विरक्ति मुझे अपने पिता के द्वारा ही विरासत में नहीं मिली है ?

परन्तु क्या यह इतनी बड़ी है कि मुझे बाँधे रह सके । ठीक है कोई शाश्वत नहीं होता । पिता भी तो सी बरस से ऊपर हैं । क्या वे जिये ही जायेंगे !

नहीं ।

तो क्या वे चले जायेंगे ?

यही मेरी समझ में नहीं आ रहा था । मैं वहाँ अपने पिता को नहीं देखा रहा था, मुझे वहाँ अनेक शताब्दियों का ज्ञान दिखाई दे रहा था । मुझे युग ही साकाररूप में दिखा रहा था । मुझे लग रहा था वह मनुष्य की देह धारण करने वाला ही नहीं था, वहाँ मुझे मनुष्य की आत्मा के सच्चे दर्शन हाँ हो रहे थे ।

और फिर स्वर उठा—

चारि जने मिलि खाट उठाइन

चहूँ दिसि धू धू ऊठल हो

कहत कबीर सुनो भइ साधो

जग से नाता छूटल हो ।

वहीं मैं अपना संतुलन खो बैठा और पाठी पकड़कर रोने लगा । उस समय दीपक के प्रकाश में जब पिता ने मेरी ओर देखा तो मुझे लगा सचमुच वह दृष्टता हुआ नाता फिर जुड़ गया है, अब वह नहीं टूटेगा क्योंकि स्नेह के बंधन में खिंचने की शक्ति होती है ।

पिता ने कुछ नहीं कहा । वे मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे । मन्वते हुए हाहाकार श्राव्य हो गये । सब कुछ केन्द्रीभूत हो गया, सब कुछ पास आगया ! उस भीषण में कबीर के स्पर्श से दीपक के प्रकाश में बैठा हुआ मैं अपने माँह

ममता और स्नेह की स्तर-स्तर जमी पतों को उबड़ते हुए देखता रहा ।

आधीरात हो गई थी ।

मैंने देखा वे शांत सो गये थे । मैंने खेस उढ़ा दी । वे किसी गहरे स्वप्न में उलभे हुए से दिखाई दे रहे थे । वह न जाने किस विराट यात्रा का अंत था या किसी नवीन महान यात्रा का उपक्रम था । मैं नहीं जानता । वे जब बात करते थे तो ऐसा लगता था, जैसे वे किसी गूढ़ रहस्य को समझते हैं, जैसे समझते तो नहीं, परन्तु उसकी उन्हें अनुभूति हो चुकी है और वे उसे समझाने की चेष्टा करते हैं तो शब्द निर्बल हो जाते हैं, वे जो कहना चाहते हैं, निस्संदेह वे उसे नहीं कह पाते । और मैं सोचने लगा, क्या वे फिर ऐसे ही किसी रूप के विषय में आज फिर सोच रहे थे ! अनाहत नाद !! वह नाद जो किसी प्रकार के संघर्ष से जन्म न ले ! पिता उसे बोलती देदीप्यमान शीतल ज्वाला का आलोक कहा करते थे.....

मुझे लगा इस समय खाट पर वही आलोक मुस्करा रहा था.....

सुबह जब मैं उठा तो आवाज सुनकर ।

धीरा कहार था । उसने पुकारा : कमाल भैया । कमाल !

मैं बाहर आया ।

अरे बाहर आकर तो क्या देखता हूँ, कि देखता ही रह गया । मेरे पिता के पास कुछ युवक आया करते थे । वे उनकी कविताओं को लिख लिया करते थे । कभी कभी मैं भी लिख लेता था । पिता के पास सदा ही साधूसंतों की भीड़ रहा करती थी ।

मगहर में तो वह भीड़ बढ़ गई थी । बल्कि माँ के मरने के बाद से तो हम दोनों की कमाई साधू संतों की सेवा में ही उठ जाती थी । पिता आगे आगे चलते । संग भीड़ चलती । कभी पिता गाते, भीड़ दुहराती । परन्तु मैंने जो आज देखा वह तो बात ही और थी ।

सारा मगहर निस्तब्ध इकट्ठा हो गया था ।

उस भीड़ की उदासी में मेरे पिता की ऐसी महानता छिपी थी। आकाश सिहर उठा। मुझे याद आया, अंधेरी काली रात छा रही थी। आकाश धमंड करती घटाएँ छा रही थीं। सनसनाती हवा शीतल सी बह रही थी। मैं उस दिन न जाने पिता के किसी गूढ़ पद का चिंतन कर रहा था। अचानक वह ठंडी हवा मेरे शरीर में लगी तो मैं सिहर उठा था। उस सिहर में कितना अव्यक्त आनंद था ! वह किसी अप्रत्यक्ष आनंद का झिलमिलावट सा आभास था जो आया था, जिसने मुक्त रोम रोम को जगाया था और फिर अंतरिक्ष तक सनसनाहट सी फैलाकर वायु की अंधेरी तरलता पर झूमकर मचलने लगा था। वैसे ही सिहरन भरी आनंद की अभिव्यक्ति मुझे हुई। मैं कवि नहीं हूँ, मैं दार्शनिक नहीं हूँ, मुझमें पिता की ही महानता की छाया भी नहीं, न मुझमें कभी उसकी ही आत्मविस्मृत सत्यान्वेषण की वह अटूट तन्मयता ही रही है, जो लघु को दीर्घतम बना देती है। पर उस भीड़ को मैं देखता रह गया।

वहाँ हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे और स्वर उठा : क्यों कमाल ! तुने बताया तक नहीं ? सद्गुरु का समय आ गया है.....
मैंने दोनों हाथ उठाकर दयनीय स्वर से कहा : ऐसा नहीं कहो दयालुओं!
ऐसा कठोर वचन मत कहो.....

मेरे पसीजे हुए शब्दों ने उन्हें आर्त कर दिया। वह वेदना जैसे सबको छू गई थी।

मुझे अनुभव हुआ कि आदमी जब नृष्णा, ईर्ष्या, अहंकार और स्पर्धा से शीघ्र ही कुछ प्राप्त कर लेने के लिये काम करता है, तब वह अपने भीतर ही प्रसहिम्ण हो जाता है और अपने कार्य की छोटी से छोटी असफलता भी उसे बहुत ही बड़ी सी दिखाई देती है। उसे अपनी ठीक बात में भी तब विश्वास नहीं रहता क्योंकि एक अहंकार का उद्रेग उसकी नीवों को टोस भूमि पर नहीं रहने देता। वह डरता है। यदि वह नास्तिक होता है तो उसे घेर लेता है। यदि वह आस्तिकता की ढाँवाटोल विश्वास की किरण कर झूमता है तब वह मृगतृष्णा में भटकने लगता है। मैं स्वयं नहीं, कि अभावप्रस्त मानव को किस प्रकार त्याग का

द्विताने की सच्चाई मिल सकती है। परंतु कबीर का जीवन यह अपूर्णता नहीं थी। चरमशांति थी वहाँ। निर्द्वन्द्वता आत्मसंतोष और आत्मयातना से नहीं आती। यह दोनों तो एक ही पहलू के क्रम से सामाजिक और व्यक्तिगत पक्ष हैं। वह तो तब मिलती है जब भीतर कोई रिक्त ही बाकी नहीं रह जाये।

पिता महान् है। वे पढ़े नहीं हैं, पर दुनिया उनसे पढ़ती है। मैं पढ़ा हूँ, लिखा हूँ क्योंकि उनके कारण, वचन से ही कुछ पढ़े लिखे लोग घर पर आते रहे हैं, उन्होंने मदद की है, फिर भी मैं अनुभव करता हूँ कि जो वे जानते हैं वह मैं नहीं जानता।

मैंने कहा : वे सो रहे हैं। भाइयो वे सो रहे हैं।

पूर्णशांति छा गई मानों असंख्य मेघों की गर्जना थम गई हो और सब चुप हो गये हों।

मगहर की छोटी सी बस्ती में आज काम धंधा बन्द था। सब बैठे थे। मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य्य अब हुआ। मैंने हिन्दू और मुसलमानों की बातें सुनीं।

‘कबीर साहेब हिन्दू थे।’

‘हिन्दू कैसे हुए ? वे तो हम जैसे मुसलमान थे ?’

मुझसे सहा नहीं गया। आखिर तो जो जिस दायरे में रहता है, वह उस से बाहर की बात सोच भी तो नहीं सकता। हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग कुञ्जों में पड़े हुए मेंढक थे। उनकी सारी परंपराएँ, उनके सारे फैलाव वहाँ तक तो जाकर पहुँचते थे !! मुझे खेद हुआ, जीवन पर्यन्त मेरे बाप ने जो कहा उस पर अभी से चोट होना शुरू होगई थी। वे उन्हें भी बाँट लेना चाहते थे।

और इसका भी मूल क्या था ! श्रद्धा, आदर, और प्रेम। यही तो वे कबीर साहेब के लिये लेकर आये थे। उनकी राय में इससे और कुछ अच्छा वे कर भी तो नहीं सकते थे।

मैंने समझाना चाहा, पर सोचा जाकर पिता को जगा कर कहूँ, वे हँसेंगे और फिर कुद्द कहेंगे तो सारी भीड़ शर्मिन्दा हो जावेगी। यही सोच कर मैं अदर गया। पर जब मैं भीतर गया तब देखता ही रह गया।

साहेब तो सो गये थे। मैं उनका चेहरा, उस समय मंत्रमुग्ध सा खड़ा रह गया। वे ऐसे थे कि उनकी शोभा मैं कभी भी नहीं कह सऊँगा। वह ऐसे दृष्य से दिखाई दे रहे थे, जैसे बिना ज्योति की उजियारी फैल गई थी। अक्षय पुष्प के पास हंस पहुँच गया था। वहाँ पद्मों की परछाइयों में माये पर छत्र लगा हुआ था और मेरे पिता जैसे चंद्र, मानु और तारागणों के भीतर से निकलती ज्योति किरणों को देखकर चकित हो गये थे। आज हंस ने सुल पाया था! यही वह आदि वाणी थी, जिसका वेद भी श्रंत नहीं पा सका था।

सतगुर हंस का रूप धारण करके समस्त शोक छोड़ कर अपने लोक को चला गया था! भृङ्ग ने कीट को पलट कर भृङ्ग बना लिया था और अपना बैसा रंग देकर उसे संग उड़ा ले चला था। नायूत से परे मलकूत पहुँचने पर उसे विष्णु की ठाकुरी दील पड़ी थी। इंद्र कुवेर बैठे थे, रंभा नाच रही थी, तैलस कोटि देवता खड़े थे। हंस बैकुण्ठ को छोड़ कर आगे चला, शून्य में ब्रह्मण ज्योति जगने लगी। ज्योति प्रकाश में निज तत्व को देखकर वह हंस सब ही निर्भय हो गया और उसके समस्त संशय और आतंक दूर हो गये।

नूर के महल और नूर की भूमि पीछे छूट गईं। नवीं मुकाम भी पार हो गया। आनंद से सब फटीं को छोड़ता वह हंस तो सत्यलोक पहुँच गया।

पुरुष ने जब हंस को दर्शन दिया तब जन्मजन्मांतर का ताप मिट गया, आसुर प्रेम जाग्रत हुआ था, अपना जैसा रूप बना लिया था, जैसे सोलह सूर्यो का आलोक भास्वर हो उठा।

अंडकटाह पार हो गये। भ्रम और कर्म की सीमाएँ पीछे छूट गईं।

मैं अनाकू खड़ा रहा। शायद मैं अपने को भूल गया था। मैं केवल महात्मा के श्रंतिम दर्शन करता रहा।

उस समय मुझे सुन पड़ा, कोई गा रहा था—

सुरत सरोवर न्हाइ के मँगल गाइये
दरपन सब्द निहार तिलक सिर लाइये ।
चल हंसा सतलोक बहुत सुख पाइये
परसि पुरुख के चरन बहुरि नहि आइये ।
अमृत भोजन तहाँ अमी अँचवाइये
मुख में सेत तँमूल सब्द लौ लाइये ।
पुहुप अनूपम वास हँस घर चलि जिये
अमृत कपड़े [ओढ़ि मुकुट सिर दीजिये ।
वह घर बहुत अनंद हंसा सुख लीजिये
वदन मनोहर गात निरखि के जीतिये ।
दुति बिन मसि बिन अंक सो पुस्तक बाँचिये
बिन करताल वजाय चरन बिन नाचिये ।
बिन दीपक उँजियार अगम घर देखिये
खुल गये सब्द किवाड़ पुरुख सों भेंटिये ।
साहब सन्मुख होय भक्ति चित लाइये
मन मानिक सँग हंस दरस तहँ पाइये ।
कह कवीर यह मंगल भाग न पाइये,
गुरु संगत लौ लाय हंस चल जाइये ।

वही, वही तो है यह ! हंस । पहले यह सोहंग था, फिर पलट कर हंस हो गया । गगन गुफा में अजर रस भरने लगा था । बिना बाजे की भंका उठ रही थी, केवल ध्यान की अटूट तल्लीनता थी । वहाँ ताल नहीं था । जहाँ तहाँ कमल फूल रहे थे, उन पर हंस चढ़कर केलि कर रहा था । बिचंदा के ही उजियारी फैली थी, और हंस दिखाई दे रहा था । युगों युगों : तुष्णा बुझ गई थी ।

‘जय ! सद्गुरो की जय !!’

भीड़ निनाद करने लगी । उस कोलाहल को सुनकर मेरा हृदय दूट-दूक होने लगा ।

अरे मेरा बाप भीतर खाट पर मरा पड़ा था और मुझे धिक्कार कि मैं रोया तक नहीं । मैं भागा । मैं फूट-फूट कर रोने लगा ! वह मुझे छोड़ गया था । हाथ में अकेला रह गया हूँ । अब मेरा कोई सहारा नहीं है ।

हठात् मैं चौंक उठा ।

आलम कह रहा था : कौन होते हो तुम छूने वाले ? जन्म जिदगी तुमने उसे नीच कहा । कबीर साहेब तुम्हारे नहीं हमारे थे । हम ही उन्हें बाइजगत दफन करेंगे ।

और विक्रम कह रहा था : अरे जाओ जाओ ! तुम मुसलमानों ने इन्हें जिंदा मरवा देने की कोशिश की । वह हिन्दू थे । और हिंदुओं के ही कंधों पर चढ़कर वे आज जायेंगे ।

मुझे लगा मेरा हृदय फट जायेगा । क्या सचमुच संसार इतना मूर्ख है, मैंने सोचा । भगड़ा और वही भगड़ा, तो भी किसके पीछे ? उसी कबीर के जो इन दोनों का मज़ाक उड़ाता था ? जो मानव था, केवल मानव था ।

मुझे लगा कि इस अज्ञान के पीछे श्रद्धा करने के योग्य भी एक वस्तु थी । वह थी मेरे पिता की श्रद्धा जो इन दोनों के भीतर समान रूप से थी । वह महा कवि इन दोनों के लुद्र बंधनों से इतना ऊपर उठ गया था कि दोनों ही उसको अपना अपना स्वीकार करते हुए नहीं झिझकते थे । और मेरे सामने यह विराट भारत देश आया । एक ओर हम थे, नीच, जो नीच समझे जाते थे । मेरे पिता उन नीचों में पलने वाली महानता के प्रतीक थे, दूसरी तरफ इस्लाम था, जिसके नारों से सारा देश गूँज रहा था, तीसरी तरफ प्राचीन ऊँची जातियों के विशाल मंदिरों के घंटों की घनघनाहट थी, जो इस्लाम के सिपाहियों के घोड़ों के सुमों की आवाज को डुबाने के लिये

अपने आपको बढ़रा बनाकर बज रहे थे, गूँब रहे थे, और फिर हम थे, वो सबको को धरती पर खून दे देकर विजयी घोड़ों के द्वारा उठाई हुई धूल को दबाये रखते थे, फिर भी अपने को नीच ही कहा बाते हुए मुनते थे। और मेरे पिता एक ऐसे नये स्वप्न की खोज में थे जहाँ हिंदू हिंदू नहीं था, जहाँ मुसलमान मुसलमान नहीं होगा, इन सबसे ऊपर मनुष्य था, एक नया आदमी, नया आदमी....

मुझे लगा दिशाएं पुकारने लगी थी—कमाल ! पहला नया आदमी सो गया है, पहला नया आदमी सो गया है.....

लेफ्टिन मैं बाग रहा हूँ, मैंने कहा और तब जब कि दोनों झगड़ा करने वालों का अहंकार उद्दण्ड हो रहा था, मैंने कहा : यहाँ लड़ो नहीं। जानते हो तुमने मेरे पिता की चादर पर क्या चढ़ाया है ?

‘फूल हैं।’ उन्होंने कहा।

मैंने कहा ‘फूल हैं ! बैज्ञान हमको बाने वाले पेड़ जब धरती में से रस खींचकर अपने चौपन की सबसे सुन्दर भेंट देते हैं तब ये फूल बनते हैं। तुमने देवता पर चढ़ाने वाली वस्तु को मेरे पिता पर थप्पा से चढ़ाया है क्योंकि पिता अब मिट्टी हो गये हैं। तुम मिट्टी के पीछे लड़ना चाहते हो। उठा लो यह फूल, बाँट लो इन्हें, गाड़ दो, जलादो, इस दुनिया के पहले इन्सान को अपने छोटे घमों के टायरों में बाँधने के लिये काटो नहीं, यह तुम्हारे दफनाने और जलाने से बड़ा नहीं हो सकेगा, यह बिदा था तब तुमने उसे क्यों नहीं बाँट लिया ! तब तुम लोग डरते थे। तुम्हारा मुल्तान जानता था, तुम्हारे मुला टगते थे, तुम्हारे पंडित और तुम्हारे विशाल मन्दिर जो अन्ध्याय के प्रतीक बनकर खड़े थे, सब टरने थे। चले बाओ !! चादर और प्रेम के नाम पर, थप्पा के नाम पर, तुम उस आजाद आदमी को अन्त में गुलाम नहीं बना सकते। वह तुम सबसे ऊपर था। वो तुम्हारे टायरों को चुनीठी देकर बीठा रहा। तुम्हारे घमों के ऊपर अपने सत्य का भंडा फहरावा रहा, उसे तुम अपने घमों में दफनाना या जलाना चाहते हो ! यह असंभव है, यह असंभव है.....

और मैं पिता के पाँव पकड़ कर रोने चिल्लाने लगा : रिया ! देखते

हो ? यह लोग क्या कह रहे हैं ! यह लोग अभी तक अंधे हैं । कल तक तुम मशाल उठाये खड़े थे, तो इन सबका अन्वेषण तुम्हारी अंगड़ाइयों लेकर बढ़ती मशाल की लपटों को देखकर काँप रहा था और आज तुम सो गये हो, तो यह समझ रहे हैं कि मशाल धूल में गिर गई है, पर नहीं, ऐ हिन्दू मुसल-मानों ! वह मशाल मेरे कबीर के रक्त के स्नेह से भीगी हुई है, वह एक गरीब की इज्जत है, वह नीच जात का बड़प्पन है, वह एक अनपढ़ का शा- है, वह दुतकारे हुए की अपराजित मानवीयता है, उसे तुम तो क्या इतिहा भी नहीं बुझा सकेगा, वह अमर है, वह अमर है.....

पिता का वाना

वह एक शीर चित्र था—उसे मैं क्या कहूँ, इतिहास बोलने लगेगा.....

लोई भोंपड़े में लेटी हुई थी। कबीर बाहर से आया था।

‘लोई !’

‘आ गये ?’ लोई ने उठ कर कहा—‘कहाँ चले गये थे, सुबह से यह जा होने आये। वहाँ गये होंगे !’

वह रुठी हुई थी।

‘कहाँ ?’ कबीर ने मुस्करा कर पूछा।

‘अरे उन्हीं बनफटों के पास।’ लोई ने कहा—‘क्या कहा था। मैं तो च भी नहीं पाती कि तुमने ऐसा कहा होगा ?’

‘क्या कहा था लोई ?’ कबीर ने कहा और रोटी हाथ में ले ली।

बताऊँ ?

'नारी की भाँई परत
अन्धा होत भुजंग,
कविरा तिनकी कौन गति
जो नित नारी को संग !'

कबीर हंसा । लोई ने कहा : 'तुम भुजंग हो न ? क्यों ? नारी ऐसी बुरी होती है ? मैंने तुम्हारा कुछ नुकसान किया है ?'

कबीर ने कहा : 'श्री यही तो मैंने उन नारी से डरे हुआँ से कहा था । नारी की छाया से साँप तक अंधा हो जाता है, यानी जो जहरीला होता है ।'

'श्री आगे ? ठहरो चटनी पीसती हूँ । आज श्रीर कुछ रहा ही नहीं ।' लोई ने सिल लोढ़े को संभाला श्रीर मिर्च पीसने लगी । 'बोलो । मैं तुम्हें नरक में भेजूँगी ? क्यों ?'

चटनी लेकर कबीर ने कहा—'तू समझती नहीं लोई ।'

'क्यों ?'

'वे जो नारी को विषय की ही वस्तु समझते हैं, उनके लिये क्यों ऐसा नहीं कहा जाये ? अगर मैंने सब नारियों के लिये ऐसा कहा होता, तो तुम्हसी घरधाली के साथ घर रहता ? कहीं अकेला भटकता नहीं ?'

लोई मुस्कराई । मानों प्रसन्नता आई है, उसे वह छिपाना चाहती है । कहा : 'यही तो मैं भी सोचती थी । जिसने पतिवरता के इतने गुन गाये हों वह क्या कनफटों की सी बातें करेगा ?'

लोई गाने लगी—

कविरा सीप समुद्र की
रटै पियास पियास ।
श्रीर बूँद को ना गहै
स्वाति बूँद की आस ।
चढ़ी अखाड़े सुन्दरी
माँडा पिउ साँ खेल ।

दीपक जोया ज्ञान का
काम जरै ज्यों तेल ।

लोई ने अपने ताने को संभाला और कहा : क्यों कंत तुमने नारी के लिये तो इतनी अटक लगा दी, पर पुरुष पर बंधन न दिया ?

'लोई !' कबीर ने पानी पीकर कहा—'पुरुष-पतंगा है । वह सतगुरु के पिना कहीं बचता है ! परनारी तो पौनी छुरी है, वह तो अङ्ग अङ्ग काट देती है !'

'तुम मुझे देखाकर कहते हो । वैसे तुम भी हो पुरुष ही । तुम लोगों के मन में एक अहंकार रहता ही है, तभी तो स्त्री को तुम नीचा समझते हो ? तुम भी कनफटों में रहते, जो मैं न होती !'

'क्यों, तू न होती तो मैं कहीं वाम मार्गियों में जा मिलता तो ?'

वह हँसा । और कहा : 'इन दो श्रितियों के बीच में ही सद्ब जीवन है लोई !'

कबीर खाता रहा, लोई देखती रही । लोई कहने लगी, 'कमाल को दुन्दे विन्ता रहती है । तुम दिन भर अपनी धुन में लगे रहते हो और कन्ह-कन्ह के आने जाने वाले साधुओं के साथ वह बैठा रहता है !'

कबीर ने कहा : 'वह कोई ऐसी बात नहीं है । मनुष्य अपने विचार इन्हीं धाप बनाता है, लोई । वन जाने से कोई लाभ नहीं होता । योग और योग तो घर में भी हो सकते हैं । वन जाने पर भी अगर रोना-कल्लनर क्या नह तो उल्लसे लाम ही क्या ! कुल बोगनी अगर गंगा नहा भी कहे तो कल्ले फायदा क्या !'

अभी वह अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि लोई ने कुछ बोल-हल सा मुनारि दिया । लोई चौंक उठी । कबीर काहन निरुद्ध बना । लोई ने पथ पर आ गई । देखा, नाथ जोगियों का एक हुद्दुन कल्ले का कौन कल्ले के लोग उनको प्रणाम कर रहे थे । कबीर हल भर देखता नह कौन कल्ले कल्ले कहा, 'साधुओ, प्रणाम ! कहीं से आना हुआ ?'

जोगियों का नेता गिर पर घनी वटावें निदे, लोई कल्ले कल्ले का : कल्ले

कबीर की ओर ऐसे देखा जैसे वह किसी अत्यन्त दीन वस्तु की ओर देख रहा था ।

जुलाहा रामा आगे आया । उसने कहा, 'अरे कबीर, ये लोग बड़ी दूर से आये हैं । देस-देस घूमते हुए, लोगों को उबारते हुए ।'

कबीर मुस्कराया ।

उसने योगी की ओर देखा और कहा ।

अवधू भजन भेद है न्यारा ।

क्या गाये, क्या लिखि बतलाये, क्या भरमे संसारा ।

क्या संध्या तरपन के कीने जो नहिं तत्त विचारा ॥

मूँड़ मुँड़ाये जटा रखाये क्या तन लाये छारा ।

क्या पूजा पाहन की कीने क्या फल किये अहारा ॥

बिन परचै साहव होइ बैठे करै विषय व्यौपारा ।

ज्ञान ध्यान का करम न जाने वाद करै हंकारा ॥

अगम अथाह महा अति गहरा बीजन खेत निवारा ।

महा सोध्यान मगन है बैठे काट करम की छारा ॥

जिनके सदा अहार अंतर में केवल तत्त विचारा ।

कहत कबीर सुनो हो गोरख, तरै सहित परिवारा ॥

योगी उद्भ्रान्त हो गये ।

रामा चिह्लाया, 'कबीर तू जोगियों की वेइज्जती कर रहा है । अरे सुन्न में समाध लगाने वाले संसार छोड़कर घर से निकले हैं । तू मामूली गिरस्त होकर इनसे टक्कर ले रहा है ?'

लोई ने कहा : 'क्यों नहीं, जिस माँ ने जनम दिया है उस माँ के लिये जोगियों ने यही तो किया कि उसे घर में छोड़ कर चले आये ।'

योगी आगे बढ़ा । उसने कहा, 'तू माया है, तू काम है, तू संसार में शृङ्खला है । जब नागिन लपलपाती हुई उलट कर आकाश की ओर चढ़ती है तब तू ही महाकुण्ड में अग्नि जला कर उसको सोख लेने के लिये लपलपाने लगती है ।'

योगी के उस रौद्र रूप को देखकर उपस्थित लोग आतङ्कित हो उठे ।
लोई सहम गयीं ।

योगी ने अपना रंग जमते हुए देखकर फिर चिल्लाकर कहा :

‘श्रो गृहस्थो, काल के रूप में माया तुम लोगों को ग्रसे हुए है । तुम
श्रव्यक्त पुरुष की ज्योति को नहीं समझ सकते । जब पत्नी आकाश की ओर
नहीं, धरती के गर्भ में उतरने लगते हैं, तब वृक्षों के पत्ते नहीं निकलते,
बल्कि आग के अंकुर फूटने लगते हैं, तब जानते हो, नया होता है । गाय
बाध को खाने लगती है ।’

उस समय योगी के मुख पर विजय का आभास दिखाई दिया । वह स्वर
उठा कर चिल्लाना, और उसका विशाल ऊपर उठ गया । उसने कहा, ‘श्रलाख
निरंजन ।’

सारे योगियों ने दुहराया, ‘आदेश ! आदेश !’

पथ पर खड़ी हुई स्त्रियों कांपने लगीं । रामा ने बढ़कर योगी के पैरों
पर सिर रख दिया । कुछ बूढ़ी स्त्रियों ने इशारे किये । मलूकचन्द्र की स्त्री
द्विगा गोरी थी, और सुन्दरी थी । यौवन को झनझनाती हुई प्रत्यञ्चा में
बंध कर उसका लावण्य धनुष के समान झुकने के बहाने तन गया । उसे
अपने ऊपर गर्व था । जिस समय वह भिच्चा देने के लिये बाहर आई तो
योगी ने उसकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा । वह चली गई । रामा ने कहा,
‘देखा कबीर, महाराज ने अपना काम भी नष्ट कर दिया है ।’

कबीर आगे बढ़ा ।

उसने कहा, ‘रामा, मैं एक गीत और सुनाना चाहता हूँ ।’

गीत का नाम सुनकर रामा तो चौंक उठा, किन्तु लोई ने कहा ‘सुना
कन्त । डर किसका है ?’ मानो उसे विश्वास था कि जो उसका पति कहेगा
वह अवश्य ही एक नया सत्य होगा ।

भीड़ और पास आ गई ।

कबीर गाने लगा ।

मन ना रँगाये, रँगाये जोगी कपरा ।

आसन मारि मँदिर में बैठे

नाम छाँड़ि पूजन लागे पथरा ।
कनवा फड़ाये जोगी जठवा वड़ीले
दाढ़ि बढ़ाय जोगी ह्वै गैलें वकरा ॥

योगी चिल्लाये, 'बन्द करो, वरना हम तुम्हारी बत्ती को भस्म कर देंगे।' उनके त्रिशूल तन गये थे। हवा में उत्तेजना फैल गई थी, किन्तु उस समय लोई ने चिल्लाकर कहा, 'जोगी, किसे डराते हो ? इतना भी बुनने का धीरज नहीं तो साँई से बिना दया के मिलोगे भी कैसे ?'

भीड़ पुकार उठी, 'वाह कबीरा गाये जा !'

श्रीर कबीर जो अभी तक हँसता हुआ खड़ा था उसने फिर हाथ उठा कर गाया,

जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमोले
काम जराय, जोगी है गैलें हिजरा ।
मथवा मुंडाय जोगी कपड़ा रँगैले
गीता वांचि कै होई गैलें लवरा ।
कहत कबीर, सुनो भई साधो
जमदरवजवाँ वांधरि जल पकरा ।

भीड़ ने ठहाका लगाया। रामा भाग गया। छिगा लज्जा छोड़कर खिल-खिला कर हँसी। योगी क्रोध से त्रिशूल तान कर आगे बढ़ा, किन्तु उसी समय छिगा कबीर के सामने आ गई और देखते ही देखते अनेक स्त्रियों ने कबीर की रक्षा के लिये उसे घेर लिया। योगी चफ़र में पड़ गये। एक बुढ़िया जुलाहिन चिल्लाने लगी :

'अरे किसकी मजाल है जो बत्ती में तू न खच्छर करे। एक तो हम खिलाएँ और ऊपर से इनकी गाली खाएँ ? मरे चले आते हैं यहाँ लड़कों को बहकाने। घर को आग लगा आये तो पेट को क्यों नहीं लगा लेते ?'

भीड़ ने फिर ठहाका लगाया।

जब कबीर भीड़ में से निकल कर आया तो उसने देखा कि जोगियों का पता भी न था और रामा कान पकड़े कह रहा था :

‘जान बची लासों पाये । अब नहीं जाऊँगा, न किसी को बुलाऊँगा ।’
कबीर ने कहा, ‘रामा, शृङ्गी चमकाने से क्या होता है ? सारे बदन पर
मभूत मल लेने से क्या मन का मैल जप्त जाता है ? अगर नंगे रहने से ही
योग हो जाता तो कार्या के सारे दोरों को योगी क्यों नहीं कहा जाता ?’

मौड़ छूट गयी । छिगा एकटक कबीर को और देख रही थी । लोई ने इसे
देख लिया । कबीर ने छिगा के नयनों को क्षणभर देखा और धीरे से कहा ।

‘कविरा माता नाम का भद मतवाला नाहि,
नाम पियाला जो पिये सो मतवाला नाहि ;
घायल ऊपर घाव है टोटे त्यागी सोय,
भर जीवन में सीलवैत विरला होय सो होय ;

छिगा ने मुना, मुककर कबीर के पाँव छुए और लौटकर अपने घर की
ओर चलने लगी ।

कबीर ने कहा,

प्रीत बड़ी है तुज्ज से बहु गुनियाला कंत,
जो हँस बोलीं और से नील रंगावों दंत ।

नैनों अंतर आव तू नैन भांप तोहि लंब,
ना मैं देखौं और को ना मैं देखन दंब ।

छिगा चली गयी ।

लोई ने कबीर का हाथ पकड़ लिया और कहा : ‘कंत आज जान बच
गयी ! जोगी चले ही गये, नहीं तो खूनखचर हो जाता । ऐसी क्या जरूरत
थी कि इतना साफ-साफ कह दिया ! सच, मैं तो डर गयी थी ।’

कबीर ने निर्मय दृष्टि से लोई की ओर देखा और बड़बड़ाया,

गगन दमामा वाजिया पड़त निसाने घाव ।
खेत पुकारे सूरमा अब लड़ने का दाँव ।
तीरतुपक से जो लई सो तो सूर न होय,
माया तजि भकती करे सूर कहावै सोय ।
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर होय,
जैसे वाती दीप की कटि उजियारा होय ।

लोई ने देखा और मुस्करायी। वह मुस्कान एक अक्षय विश्वास था मानो प्राणों के कारागृह के द्वार खुल गये थे—और जिस आलोक को आज तक वह पत्थरों और लोहे से जड़े हुए वातायानों से देखा करती थी वह आज उस द्वार में से भीतर प्रवेश कर रहा था।

भोंपड़ा अपने दारिद्र्य को लिये खड़ा था। चारों ओर जुलाहों की बस्ती में आज की घटना पर तरह-तरह की बातें हो रही थीं। रामा जनमत के कारण चुप था किन्तु उसके मन में अभी तक संदेह और आतङ्क असंतोष की बैसाखियों पर लँगड़ी रुढ़ियों को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे। छिंगा छुपर के नीचे बैठी आज सोच रही थी कि वह कितनी महान छायी के सामने से निकल गयी थी। यह भाव भी उसके सामने स्पष्ट नहीं था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे बहुत दूर, बहुत ऊँचे पहाड़ के ऊपर कोई देवता का मन्दिर था जहाँ वह जारही थी, गयी थी किन्तु पहुँचने पर भी उसे लगा था कि देवता अब भी उतनी ही ऊँचाई पर था जितना वह धरती पर से सिर उठाकर देखती थी।

लोई ने पीढ़ा बिछा दिया था। कबीर सूत की पौनी मुलभाता हुआ बैठा था! लोई ने घड़े उठा लिये और पानी भरने चली गयी। कमाल भीतर आया।

‘दादा’, उसने कहा, ‘तुम कहाँ चले गये थे?’

कबीर ने मुस्करा कर कहा, ‘बेटा, तुझे हूँ ढने गया था।’

अबोध बालक समझ नहीं सका। उसने कहा, ‘दादा, भगड़ा क्या हो रहा था?’

कबीर ने उत्तर दिया, ‘बेटा, आज बस्ती में अंधों के बीच में एक हाथी आगया था।’

‘फिर?’ कमाल ने पूछा।

‘फिर!!’ कबीर ने कहा—

‘ज्यों अंधरे कौ हाथिया सब काहू कौ ज्ञान,
अपनी अपनी कहत हैं काको करिये ध्यान।’

कमाल ने देखा और आँखें फाड़कर देखता रह गया।

नाथ जोगियों की बात काशी में फैल गई ।
 और कुछ ही दिन में सारी काशी बौखला उठी ।
 मुल्ला लोग कहने लगे । पंडित लोग कहने लगे । कहने को क्या नेंदी
 कहा ।

एक मुल्ला नमाज़ पढ़ कर निकला । उसने कुछ नीच जात के लोगों को
 कलमा पढ़ाया था । कबीर राह पर जा रहा था ।

देशा तो गाने लगा—

अल्लह राम जीव तेरी नाई,
 जन पर मेहर करहु तुम साईं ।

क्या मूँड़ो भीमहि सिर नाये क्या जल देह नहाए
 खून करै मसकीन कहावै गुन को रहे छिपाए ।
 क्या भो उज्जू मज्जन कीने क्या मसजिद सिर नाए ।
 हृदये कपट नेजाव गुजारै का जो सक्रा जाए ।
 हिंदू, एकादश चौबिसि रोजा मुसलिम तीस बनाए ।
 बारह मास कहो क्यों टारो ये केहिमाहँ समाए ।
 पूरव दिसि मे हरि को दासा पच्छिम अलह भुकामा
 दिल में खोज दिले में देखो यहै करीमा रामा ।
 जो खोदाय मसजद में बसतु है और मुलुक केहिंकेरा,
 तीरथ मूरत राम निवासी दुइ महँ कितहँ न हेरा ।
 वेद कित्ताव कीन किन भूठा भूठा जो न विचारै
 सब घटि माहिँ एक करि लेखँ भँ दूजा करि भारै
 जेते औरत मर्द उपाते ॐ सो सब रूप तुम्हारा
 कबीर पोंगडा+ अलह राम का सो गुरुपीर हमारा ।

भीड़ ने जयजयकार किया। नीच जातों में हल्ले हो गये। औरतों ने कबीर पर फूल बरसाये। बच्चे उनके नाम का जयजयकार करने लगे।

नाथ जोगी सामने नहीं आते थे। वह उनकी असांसारिकता को देखकर मज़ाक उड़ाता था। उनके जादू टोने फीके पड़ने लगे। भीख पर पलते साधुओं के विरुद्ध उसने जो पुकारा तो काशो के बच्चे दुहराने लगे—

सती न पीसै पीसना
जो पीसै सो रांड
साधू भीख न मांगई
जो मांगै सो भांड !

वह गरीब था। जुलाहा था। मेहनत करता। खाता। परिवार पालता। पोथी वालों को देख कर लड़के चिढ़ाते—

मेरा तेरा मनुआं कैसे एक होइ रे,
मैं कहता हूँ आंखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता सुरभावन हारी,
तू राख्यौ अरुभाई रे !
मैं कहता तू जागत रहियो
तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो
तू जाता है मोरि रे।

जुगन जुगन समभावत हारा
कहा न मानत कोई रे।
तू तौ रंडी फिरै विहंडी
सब धन डारे खोइ रे।

उसने एक अत्यन्त धनी सेठ के द्वार पर लगी भूखों की भीड़ देख कर एक दिन गाया—

नाम सुमिर, पछतायगा।
पापी जियरा लोभ करत है

आज काल उठि जायेगा ।

लालच लागी जनम गँवाया

माया भरम भुलायेगा ।

पेश्याओं के कोटों की ओर जाते सुन्दर युवक तरुणों को देखकर उसने मुनाया :

भजु मन जीवन नाम सवेरा,
सुन्दर देह देख निज भूलो
भ्रष्ट लेत जस बाल बटेरा
यह देही को गरब न कीजें
उड़ पंछी जस लेत बसेरा ।

बजार में घबड़ाहट फैल गई । रईसों के बेटे लोकलाज से छिप छिप कर भागने लगे ।

भरे मन्दिर में उसने गुंसाईं जी पर चोट की—

ऐसी दुनिया भई दिवानी
भक्ति भाव नहि बूझै जी
कोई आवे तो बेटा मागें
यही गुसाईं दीजे जी
कोई आवे दुख का मारा
हम पर किरपा कीजे जी
कोई आवे तो दौलत मांगें
भेंट रुपया लीजें जी,
कोई करावें ब्याह सगाईं
सुनत गुसाईं रीझै जी,
सांचे का कोई गाहक नहीं,
भूठे जगत पतीजें जी
कहै कबीर सुनौ भाई साधो
अंधों का क्या कीजे जी ।

नीच जातियों में तो खलबली मच गई थी । वे कबीर को घेरे रहते ।

घर पर लोई देखती । कबीर अलमस्त फक्कड़ बैठा रहता । गुँसाई जी का नौकर फटकारने आया । बोला—ऐ जुलाहे । जानता है किससे टकर ले रहा है ?

गुँसाई ने नाथ जोगियों को खबर भेज दी थी । वे भी कबीर की हत्या करना चाहते थे । कबीर ने भीड़ में ही कहा : टकर !!

खुल खेलो संसार मैं बांधि न सक्के कोय ।

जा जाकर कहदे—कबीर ने कहा है—

जाकौ राखे साँइया मारि न सक्कै कोय
नौकर के पीछे और नौकर आगये थे । पर कबीर ने तान छेड़ दी—
डर लागे हांसी आवै

अजब जमाना आया रे !

धन धौलत ले माल खजाना

वेश्या नाच नचाया रे ।

सूट्टी अन्न साध कोहू माँगै

कहैं नाज नहिं आया रे

कथा होय तहँ सोता सोवै

वक्ता मूँड़ पचाया रे ।

होय जहां कहिं स्वांग तमासा

तनिक न नींद सताया रे,

भंग तमाखू* सलफा गाँजा

सूखा खूब उड़ाया रे ।

और जब यह संवाद गुँसाई जी के पास पहुँचा वे क्रुद्ध हो उठे । बोले वह ईश्वर को तो मानता है न !

ऋषि ने कहा: 'मानता है महाराज, पर वह वेदों को नहीं मानता । कहता है व्यर्थ है । महाराज ! वह तो कहता है संस्कृत कुंए का बंधा हुआ पानी है,

* तमाखू शब्द क्षेपक लगता है क्योंकि कबीर के समय में भारत में तमाखू नहीं थी ।

बढ़ता पानी तो भास्ता है । [अर्थात् जन भाता]

'अच्छा !!' गुँसाई जी ने फिर दिलाया ।

'बलस्त क्या हो आया, मुसलमान हो गया ! पहले तो अन्तर्गतों को मानता था ।'

'अब नहीं मानता !' ये चींके ।

'मानता ? महाराज ! वह तो गुले ग्राम कहता है कि राम दशरथ का बेटा मैं नहीं मानता । मेरा राम तो उससे परे है, उससे भी परे है !'

'निगुंशिया है !'

'नहीं महाराज ! यह तो कहता है—

'निगुंश सगुंश से परे तहें हमारा ध्यान !'

'अरे तेरा ध्यान !!' एक वृद्ध ब्राह्मण ने धुंसा से कहा ।

'महाराज पहले से तो वह बहुत बदल गया है ।' श्रुति ने कहा—'पहले वह जोगियों से उलटपाटियों कहता था, छेड़ता तो तब भी था, पर अब तो गुले ग्राम इज्जत उतारता है । उसे डर ही नहीं । मैंने कहा तो बोला कि हाँ मेरा रक्षक है । क्या कहता है जानते हैं—

'वाल न बाँका करि सर्क जो जग वीरी होय ।'

'अच्छा जी !!' गुँसाई जी ने कहा । 'वह है किस पय का ?'

'किरी का नहीं महाराज ! बस मक्ति, शान की अजीब बातें कहता है । बाहरोंत वह नहीं मानता । कुछ पण्डित कया बाँच रहे थे । उधर भूमे इफट्टे हो रहे थे । पंडितों ने उन्हें शोर करने पर डाँटा तो भट भूषों की ओर राधा होकर बोल उठा—

कविर हुमा है कूकरी

करत भजन में भंग,

याको टुकड़ा डारि कै

सुमिरन करो निसंग ।

'पंडित बिचारे कहीं से लाते । चले आये ।'

'घमनाय हो गया,' गुँसाई जी ने कहा ।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा : अब क्या करें ? 'गंगा घाट पर मैं माला के

था । उधर से कुछ औरतें निकली । मैंने माला फेरते-फेरते देखा कि कोई बदमाश उन्हें छेड़ न दे, बस भ्रष्ट ही तो बोल उठा—

माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर ।
कबिरा माला मनहि की और संसारी भेख
माला फेरे हरि मिलें गले रहँट के देख ।
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहि
मनवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहि ।

सब औरतें हँसने लगीं । मेरी तो नाक कट गई । और यही नहीं । पिंड-दान देने बहुत से गाँव के लोग आये थे । पण्डा बता रहे थे, वे सिर मुड़ा रहे थे । बोल उठा—

मूँड़ मुँड़ाये हरि मिलें सब कोई लेओ मुंडाय,
वार वार के मूँड़ते भेड़ न वैकुण्ठ जाय ।'

गुँसाई जी ने कहा : 'उसकी पिटाई क्यों नहीं होती ?'

'महाराज सारी नीच जातें उसके साथ हैं । अकेला तो उसे वे लोग छोड़ते ही नहीं, शेर बना घूमता है ।'

'अजी !' पुजारी नैन उजागर ने कहा : 'कथनी करनी का बड़ा हुल्लाह मचा रखा है उसने ।'

'तो भई वह कहता क्या है ? सगुण नहीं, निगुण नहीं, फिर है क्या उसका भगवान ?'

'महाराज मैंने पूछा था ।' ऋषि ने कहा । 'बोला, न वह भारी है, न हल्का है, मैंने तो उसे देखा नहीं । और जो देख भी लिया होता तो तुम विश्वास कब करते । साईं जैसा है वैसा ही रहेगा । उसे अद्भुत मत कहो, और कहते हो तो छिपा कर धरलो । वह सब तो वेद कुरान में भी नहीं लिखा । न कोई पाता है, न खोता है, उसके पक्ष में तो सब भरपूर है, ज्यों का त्यों है ।'

'उसका गुरु कौन है ?'

‘गुरु को वह गोविंद से बड़ा बताता है !’

‘सूफी है, यवन !’

‘नहीं महाराज !’

‘तो सहज यानी होगा या पुराना शैव तो नहीं है ?’

‘नहीं महाराज !’

‘शाक्त है ?’

‘शाक्तों के लिये तो उसने जोर से कहा था —

कबीरा संगत साधु की
जौकी भूसी खाय
खीर खाँड भोजन मिलै
साकट संग न जाय ।

शाक्त गाली देने लगे । रोकनेवालों ने रोका तो कबीर ने कहा कि ‘कुत्ते और शाक्त को बोलने दो, जवाब मत दो !’

श्रृपि ने श्रॉखें फाड़ दीं ।

‘बाप रे ! डरता नहीं । वे तो भयानक लोग होते हैं श्रृपि !’

‘महाराज ! कल तो उसने राजब कर दिया । कुछ सिपाही जुलाहों को मार रहे थे । कुम्हार चाक चला रहा था । कबीर आगे बढ़ आया और ललकार कर बोला—

‘माटी कहै कुम्हार ते तू का हूँदे मोहि ।’
इक दिन ऐसो होयगा हौं रोदांगी तोहि ।’

‘सिपाही चले गये ?’

‘हाँ महाराज । नगर में कुछ तपस्वी आये । लोग उनके दर्शन करने जा रहे थे । एक साधू जीधित ही समाधि में उतरने वाला था । कबीर ने फट्ट ही तो चोट कस दी ।’

‘क्या कहा ?’

‘क्या कहा था ?’ श्रृपि ने वृद्ध से पूछा ।

‘बोला’, वृद्ध ने कहा—

दुर्लभ मानस जन्म है देह न वारम्बार
तरवर ज्यों पत्ता भड़ै बहुरि न लागै डार ।

हमने रोका, बुद्धि की दुहाई दी तो बोल उठा—तुम तो चले हो ।
आजाद नहीं हो । बँधे हुए हो—

‘जैसा अनजल खाइये तैसा ही मन होय
जैसा पानी पीजिये तैसी वानी सोय ।’

गुँसाई जी हिल उठे ।

काशी के दशाश्वमेध घाट पर ब्राह्मणों में स्नान करते हुए बहस दो
रही थी ।

शुभ्रपति मिश्र ने कहा : क्या कहते हो । हम नहा कर चले तो कहने
लगा—उस नहाने धोने से क्या लाभ जो मन का मैल नहीं जाय । पानी में
मछली तो सदा ही पड़ी रहती है पर धोने से क्या बास जाती है ?

परिडत कथा वाचक राधेशरण ने कहा—मैं तो काशी छोड़ जाऊँगा ।
‘क्यों क्यों ?’ सबने पूछा ।

परिडत हँ आसे होकर बोले : अब मुझे ही बताना होगा । बोला—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय
एक अक्षर प्रेम का पढ़े सो परिडत होय ।

मैंने जो घूर कर देखा तो बोल उठा—

परिडत और मसालची दोनों सूके नाहि
औरन को कर चाँदना आप अँधेरे माँहि ।

परिडत नीलकण्ठ भी साथ थे । हमने कहा—जुलाहे ! तू समझ ! पंडित
कीलकण्ठ ने भी कहा तो बोलने लगा—

ज्यों अँधरै कौ हाथिया सब काहू को ज्ञान,
अपनी अपनी अपनी कहत हैं काको धरियें ध्यान ।

अब भी काशी में रहने का धरम है ? ब्राह्मणों को ऐसे जुलाहे फटकारने

लगेंगे तब तो काम चल चुका । प्रजा क्या कहेगी ?'

'प्रजा वही कहेगी जो अब कह रही है । सारे शूद्र उसी की जय बोला करते हैं । सत्यानाश हो गया । मुझे मंगी छु गया । मैंने खड़ाऊँ मारी तो बोला —

पंडित देखा मन में जानी !

कहु घों छूत कहाँ ते उपजी

तवहिं छूत तुम मानी ।

नादर बिन्दु रुधिर एक संग

घट ही मैं घट सज्जे

श्रष्ट कमल* को पुहुमी आई

कहँ यह छूत उपजै ।

लख चौरासी बहुत वासना

सो सब सरि जो माटी

एक पाट सकल बँठारे

सीचि लेत घों काटी ।

छूतहिं जेवन छूतहिं अबवन

छूतहिं जग उपजाया,

कहत कबीर ते छूत विवजित

जाके संग न भाया ।'

'अनर्थ हो रहा है । ब्राह्मणों ! जागो । धर्म के लिये उठो । उधर यवनों ने तो नाश कर ही रखा है, और यह नीच लोग तो वेद का टाट ही उलट देना चाहते हैं.....'

परिद्धत रघुपति मिथ्र ने हाथ उठा कर कहा—दीन बन्धु, दयानिधे, शिवशम्भो, शिवशम्भो.....'

* श्राठ कमल का शरीर ।

कबीर ने कहा : लोई । मुझे चारों ओर मुसीबत दिखाई देती है । लोग जो कहते हैं वह करते नहीं । कथनी आसान है मीठी है, करनी कठिन है विष है । लेकिन कथनी छोड़कर करनी पकड़ने से ही विष भी अमृत हो जाता है ।

लोई ने बैठकर चर्खा चलाते हुए कहा : कंत । मुझे तुम्हारे वे दिन याद आते हैं जब तुम जोगियों में उलट बांसियां गाते फिरते थे ।

कबीर ने कहा : मैं अपने जीवन को पलट कर देखता हूँ लोई । मुझे अजीब सा लगता है । मैं नीच कुल में जन्मा । रामानन्द गुरु ने मुझे चेत दिया । वह सच्चमुच एक भटक़ा था । मैंने देखा मैं उस उपदेश के फलस्वरूप एक बार अपने पुराने भय और बंधन तोड़ सका । मैंने देखा जोगी, सूफी, अवतारवादी, पुराणवादी, वेद और कुरानवादी सब छोटे थे । और मैंने देखा भगवान का रहस्य इन सबसे परे है । मैं उसे ही गाता रहा लोई, पर अब देखता हूँ, अब अनुभव करता हूँ, कि संसार तो प्रेम है । धर्म क्या है ? संसार में दङ्ग से रहना धर्म है और कुल्ल नहीं ।

लोई ने उठ कर कहा : कमाल पूछता था ।

‘क्या ?’

‘यही कि दादा बदलते क्यों हैं ?’

‘उससे कह लोई—

मारग चलते जो गिरै
ताको नाहीं दोस
कह कबीर वैठा रहे
ता सिर करड़े कोस ।
कहता तो बहुता मिला
गहता मिला न कोइ ।
सो कहता वहि जान दे
जो नहिं गहता होइ ।

करनी विन कथनी कथे
अज्ञानी दिन रात

झुंकर ज्यों झूँपत फिर
सुनी सुनाई बात ।

लोई मुस्कराई । बोली : 'यही मैंने कहा था ।'

'क्या कहा था लोई ।'

'यही कि त्रिष तरह पहले घुटनों पर चलते हैं फिर दोनों पाँव पर चलने
हैं, ठसी तरह आदमी की समझ भी धीरे धीरे ही पकती है ।'

लोई का ताना

मैंने पूछा था : अम्मा ! दादा कहाँ चले गये हैं ?

अम्मा तब बैठी ताना कस रही थी । वह काम करती गई और उसने कहा था । मैं पूछता वह बताती ।

‘वेटा ! मैं कैसे बताऊँ ?’

‘क्यों ?’

‘केवल यही जानती हूँ कि वे चले गये हैं ।’

‘तो क्या माँ वे हमें छोड़ कर चले गये हैं ? जैसे और साधू सन्यासी जोगी घर छोड़कर चले जाते हैं ?’

‘नहीं वेटा ! वे ऐसे न थे । वे तो गृहस्थ थे और उन्होंने कभी बन को अपनी मुक्ति का रास्ता नहीं समझा ।’

‘तो फिर वे क्यों गये ?’

‘वेटा ! दुनिया को जब तक आदमी घूम फिर कर देख नहीं लेता तब तक उसे चैन नहीं आता ।’

‘माँ चुप रही थी । मैंने उसके मुँह पर एक करुण छाया देखी थी । उसने

फिर कहा : बेटा ! तेरा बाप कोई मामूली आदमी नहीं है, इतना मैं जानती हूँ। वह बड़ा कवि है। लोग उसका नाम डरते हुए लेते हैं। जब वह काशी में था, तब लोग उससे घबराते थे। वह साधुओं की संगत में बैठता था। साधुओं से बड़े बड़े सवाल जबाब होते थे। साधू हार जाते थे। एक किसी ने कह दिया कि कबीर तो लवार है। घर में नारी के मोह में फंसा हुआ है और दुनिया को उपदेश देता फिरता है। आदमी ही तो ये वह भी। बात लग गई चले गये।'

माँ ने आँखें पोंछी।

'तो क्या वे अब कभी नहीं लौटेंगे !'

'वे अवश्य लौटेंगे बेटा। जरूर आदेंगे। वे क्या वहाँ शांति पा सकते हैं ? नहीं, कभी नहीं। वे तो कहा करते थे—

तेरा सोई तुज्ज मे

ज्यों पृहुपन मे वास

कस्तूरी का मिरग ज्यों

फिर फिर ढूँढै पास।

यह कह कर तो उन्होंने रमते जोगियों को चुप कर दिया था बेटा।'

माँ ने बड़े कोमल और मीठे स्वर से गाया और मैंने उसके मुह पर दिव्यामा देखी—

जा कारन जग ढूँडिया

सो तों घटि ही माँहि

परदा दिया भरम का

तातें सूभै नाँहि।

जेता घट तेता मता

बहु वाना बहु भेख

सब घट व्यापक है रहा

सोई आप असेल।

भूला भूला क्या फिरें

सिर पर बधि गई बेल

तेरा साँई तुज्झ में
 ज्यों तिल माँही तेल
 ज्यों तिल माँही तेल ।
 सब घट रहा समाय
 ज्यों चमकन में अगि
 तेरा साँई तुज्झ में
 जागि सकै तो जागि ।
 पावन रूपी साँइयां
 चित चमकन लागै नहीं
 ताते बुझि बुझि जाय ।

माँ गा कर शाँत हुई । मैंने पूछा : अम्मा !
 'क्या है वेटा ?'
 'माँ लोग कहते हैं वे सबसे लड़ जाया करते थे !'
 'भूठ कहते हैं वेटा । वस उनमें एक बात थी । वे बुराई को देख कर चुप
 रहना नहीं जानते थे । ढाँगी से उन्हें चिढ़ थी । बहुत से लोग मन्दिर में
 बैठे माला जपते हैं, मुँह से राम राम करते हैं, छुआछूत करते हैं, पर हिंसा भी
 करते हैं, यह सब उन्हें पसन्द नहीं था । वे तो कहते थे—
 शून्य मलै अजण मरै
 अनहदहू मरि जाय ।
 राम सनेही ना मरै

कह कवीर समुभाय ।
 मैंने पूछा : माँ ! वे क्या जोगियों की तरह लोगों को डराते थे ?
 माँ ने सिर हिला कर बड़े गर्व से कहा—वेटा ! कैसे कहूँ ! जोगी
 होंगे उनके सामने । वे तो प्रेम के भूखे थे । प्रेम ! प्रेम ही उनका
 सब !

मां अपने उल्लास को छिपा नहीं सकी, उसने कहा—प्रेम की साधना करते करते तो उन्होंने देखा था कि यह संसार प्रेम के ही बल पर चल रहा है। माँ ने गाया—

सीस 'उतारें भुइं धरें
 ता पर राखे पाँव ।
 दास कबीरा यों कहै
 ऐसा होय तो आव !
 छिनहि चढ़ै छिन उतरे
 सो तो प्रेम न होय ,
 अघट प्रेम पिंजर वसं
 प्रेम कहावै सोय ,
 जब मैं था तब गुरु नहीं
 अब गुरु हैं हम नाहि,
 प्रेम गली अति सांकरी
 ता में दो न समांहि ।

माँ तो अपने को भूल गई थी। उसे उन शब्दों में लग रहा था जैसे पिता सामने खड़े हो गये हों। उसने कहा : वेदा प्रेम रस पीने की चाह रखने वाला कभी मान नहीं रख सकता, एक म्यान में दो खड्ग तो साथ साथ रह ही नहीं सकते। तेरे पिता क्या यही नहीं कहते थे। मैं कैसे मान लूँ कि वे इसीलिये घर को छोड़ गये हैं। उन्होंने ही तो कहा था—

कांच कथीर अधीर नर
 ताहि न उपजै प्रेम ।
 कह कबीर कस नीत है
 कै हीरा कै हेम ।
 कसत कसौटी जो टिकं
 ताको शब्द सुनाय ।
 सोई हमारा वंस है
 कह कबीर समुभाय ।

माँ जब अकेली होती तो मैं देखता कि वह ताने पर काम करती रहती, र कभी कभी वह विह्वल स्वर से बोलने लगती : चले गये हो चले जाओ । र सच कहो तुम्हें कभी घर की याद नहीं आती ? तुम्हें कभी कमाल याद नहीं आता ? आखिर जिस बड़े धन को खोज खोज कर हार रहे हो, उसे घर बैठे क्या जीत नहीं सकते थे ? मैं जानती थी तुम कभी कभी धबरा जाते हो । मैं जानती हूँ तुम जोगियों की तरह नीरस नहीं थे । तुमने कभी मेरा अपमान नहीं किया । और उस बार तुम सात दिन को चले गये थे तो तुमने क्या कहा था—

विरहिन देय सँदेसरा
 सुनो हमारे पीव ।
 जल विन मच्छी क्यों जिये
 पानी में का जीव !
 अँखियाँ तो भाँई परी
 पंथ निहार निहार ,
 जीहडियां छाला परा
 नाम पुकार पुकार ।

मैंने हँस कर कहा था : ओ बैरागी ! क्या कहते हो । कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ।

पर तुमने कहा था : लोई ! मैं और तू दो नहीं हैं । प्रेम तो मैंने तुम्हसे ही सीखा है । मैं तेरी वेदना को जब समझता हूँ तब ही मुझे लगता है मैं राम के पास पहुँच गया हूँ । तेरे विरह की शक्ति ही मेरी जड़ता को, मेरे अहंकार को नष्ट करती है । तू होती है तो मैं राम को अपने में पाता हूँ, मुझे फिर तृष्णा नहीं रह जाती लोई ! तू प्यार करना जानती है । इस प्रेम से हँ अंडकटाह चल रहा है । यह एक तरह का आलोक है ।

माँ ने आँखें पोंछ ली थी और वे फिर अपने आप से कहने लगी थीं—

मेरे कन्त ! तुम चले गये हो । दुख तो होता है पर अब तुम लौट कर मिलोगे तब कितना न अच्छा लगेगा । तुम अपना भरमना छोड़ आओगे और मैं फिर जो उठूँगी । मुझे एक एक बात याद है । तुम जाओ । मैं तो अभी से गाती हूँ बलम, तुम जहाँ भी हो यहीं से सुनो, तुम्हीं तो कहते थे, फिर आज क्या याद नहीं आयेगी—

कैं विरहिन को मीच दें
 कैं आपा दिखलाय ।
 आठ पहर का दाभना
 मोपे सहा न जाय ।
 येहि तन का दिवला करे
 वाती मेलों जीव
 लोहू सीचों तेल ज्यों
 कव मुख देखों पीव ।
 हवस करे पिय मिलन की
 औ सुख चाहै अंग ।
 पीर सहे विनु पदमिनी
 पूत न लेत उछंग ।
 मुए पीछे मत मिलौ
 कहै कबीरा राम ।
 लोहा माटी मिला गया
 तब पारस केहि काम ।
 पिय विन जिय तरसत रहै
 पल पल विरह सताय ।
 रंन दिवस मोहि कल नहीं
 सिसक सिसक जिय जाय ।

और मा फूट फूटकर रोने लगी थी । मैं भी रोने लगा था, पर मा को पता न चल जाये इसलिए मैं भीतर नहीं गया था, बाहर ही घुटनों में मुँह

दिये बैठा रहा था। कब तक मां रोती रही थी यह याद नहीं रहा, पर जब भीतर गया था तो देखा था, माँ धरती पर छाती के बल सो गई थी, उसके मुँह के चारों तरफ उसके सिर के खुले बाल बिखर गये थे। और नाँद में भी उसके मुख पर मुझे एक बड़ा मीठा सा दुलार दिखाई दिया, वह कितनी करुण थी, 'मेरी मां' 'मेरी अम्मा' 'मेरा वह पेड़, जिसने धूप में जल जल कर भी मुझ पर छाया कर रखी थी'.....

माँ ने कहा था —

एक दिन कबीर बाजार में चला जा रहा था। गुँसाई हरिहरानन्द चले आ रहे थे। उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी कि वे त्यागी थे। उनके दर्शनी उनके साथ-साथ आ रहे थे।

कबीर उन्हें देखकर एक किनारे हट गया।

गुँसाई जी ने देखा। अभी तक उसने प्रणाम नहीं किया था।

पूछा : ऋषिलाल !

'हां महाराज !' ऋषिलाल ने कहा। वह उनका चेला था।

'यह जुलाहा वही है न जिसने कारी में ऊधम मचा रखा है ?'

उस वक्त भीड़ जमा होने लगी।

ऋषि ने कहा : देखता नहीं। गुँसाई महाराज चले आ रहे हैं। कैसा कलि है ! प्रणाम तक नहीं किया जाता। जानता नहीं वे कितने त्यागी हैं।

कबीर खड़ा रहा। फिर उसने चिल्ला कर कहा—

कबिरा खड़ा बाजार में सबकी मांगे खौर,

ना काह से बाजार —

कबीर ने फिर कहा—

कबिरा राहा बजार में तियो राहुटिया हाथ,
जो घर जाये सागना सो खली हाथारे हाथ ।

श्रुति पीछे पट गया । भीष्म भिल्लारह । कबीर की जय ।

‘अरे !’ श्रुति ने कहा : ‘अंधे हांगये हो । शब्दे गुरे की पदपाज भती ।
काशी का स्यागी परमाधी राहा है और तुम जय कबीर की भोल रहे हो ।
इसका धर्म कहीं है ?’

गुँसाई जी ने कहा : जाने धि गरा । उगे खोज । राह भल । कल को
दुनाल है । समय का फेर है ।

कबीर ने कहा : गुँसाई महाराज की जयों में जय खादी है तो कवी मही
बंनते तुम । अरे पागलो ! काशी के रहने वालों ।

जहँ आपा राहँ आपदा

जहाँ रांगय राहँ रांग ,

कह कबीर फौरी मिलें

चारे दीरय रांग ।

श्रुति क्रुद्ध हो उठा । उगने कहा : ए. नयाँ । गू मदी जानवा म
पल्ले बन कर रहा है !

कबीर ने हाथ बाँध कर कहा : महाराज ! आप कांध न कर । उमरा
म नूनं बदना है क्योंकि आरडा हर नैरे काम नट रहा है ।

कबीर सोचता रहा । फिर कहा : लोई । हम गरीब हैं । लेकिन क्या तू इससे डरती है ?

लोई ने अभय नेत्रों से देखा ।

कबीर ने कहा : यह गरीबी बहुत अच्छी है लोई । गरीब ही सबका मुँह देखता है । दीन को कोई नहीं देखता । दीन को गर्व नहीं होता । मुझे यह दीनता भली लगती है लोई, यह नर को देवता बना देती है । दीन ही सबसे आदर से बात करता है । वही तो बड़ा है लोई जिसमें स्वभाव की नम्रता है ।

लोई ने कहा : हम मेहनत करके खाते हैं कंत । किसी का माल तो नहीं मारते ?

कबीर ने कहा : हम झुकते हैं, परन्तु अपने को यों झुकाना अच्छा है कि दूसरों के लिये झुकना । झुकने वाला पलड़ा ही तराजू में भारी होता है लोई । पानी ऊपर नहीं टिकता, नीचे आकर टिकता है । जो नीचा होकर भरता है वह पीता भी है, जो सिर्फ ऊँचा बनता है, वह तो प्यासा ही चला जाता है ।

जो दबे हुए अधीन हैं, नीचे नीचे हैं, यह सब पार लग जायेंगे लोई, पर जो ऊँचे हैं; कुलीन हैं, इनका जहाज अभिमान का है, वह इस संसार के समुन्द्र में हमेशा डगमगाता है । यह डूब भी जायेगा ।

लोई ने कहा : दीन हम नहीं हैं कंत ! दीन तो वे हैं जो आत्मा बेचकर पाप से पेट भरते हैं, जो कुछ दिनों के रहने के लिये दूसरों के पेट काटते हैं, गर्व करते हैं । लेकिन मैं तो और बात कहती थी !

‘वह क्या ?’

‘जो कहीं कोई साधू आ गया तो कैसे सत्कार करोगे ।’

कबीर ने दरी पर लेट लगाते हुए कहा—

चाह गई चिता गई

मनुआ वेपरवाह ।

जिनको कछु न चाहिये

सोई सहंसाह ।

मरि जाऊँ माँगू नहीं

अपने तन के काज ।

परमार्थ के कारणे

मोहि न आवै लाज ।

लोई प्रसन्न सी पास पढ़ी चढ़ाई पर लेट रही ।

माँ ने कहा : बेटा कमाल ।

मैं पट्टी बुदका लिये बैठा था । पढ़ोस के बर्षों से मैं अच्छा लिखता था। माँ ने मेरी पट्टी देखी । मुझे क्या खबर थी कि वह कुछ भी पढ़ना नहीं जानती थी । पर उसकी आँखें तेज़ थीं ।

मैंने पूछा : अम्मा ! कैसी लिखी है ।

‘अच्छी है बेटा ।’ माँ ने कहा और खाट की पाटी से पीठ टेक कर बैठ गई । बोली : ‘तू अपने मन से भी कुछ लिख सकता है !’

‘नहीं अम्मा ! कोई बोल दे तो लिख लूँगा ।’

‘सच !!’ माँ की आँखों में आँसू आगये । वह बहुत प्रसन्न हुई थी । उसकी खुशी देखकर मेरी हिम्मत बँधी थी । कहा था : तू बोल माँ । मैं लिखूँगा ।

‘लिख लेगा ?’ उसने अचरज से पूछा ।

‘क्यों नहीं माँ ! तू बोल तो सही ।’

‘अच्छा लिख ।’ माँ ने कहा ।

मैं लिखने लगा । माँ बोलने लगी—

मन तू मानत क्यों न मना रे ।

‘धीरे धीरे बोल अम्मा ।’

‘अच्छी बात है ।’

माँ बोलती गई । मैं लिखता गया ।

लिख कर मैंने कहा : पढ़कर देख अम्मा ! ठीक लिखा है !

वह क्षण भर टिठकी । फिर उसने पढ़ा :

मन तू मानत क्यों न मना रे

कौन कहन को कौन सुनन को

हुआ कौन जना रे ।
 दरपन में प्रतिविव जो भासै
 आप चहूँ दिसि सोई
 दुविधा मिटै एक जब होवै
 तो लख पावै कोई ।
 जैसे जल ते हेम बनत है
 हेम धूम जल होई
 हाँसे या तत वाहू तत सों
 फिर यह अरु वह सोई,
 जो समझै तो खरी कहन है
 ना समझै तो खोटी,
 कह कवीर दोऊ पख त्यागी
 ताकी मति है मोटी ।

माँ चुप हो गई । मैंने कहा ठीक है ?

‘हाँ !’

‘बिल्कुल ठीक है ?’ मुझे आश्चर्य हुआ ।

‘हाँ !’ माँ ने कहा ।

‘यह कैसे हो सकता है !’ मैंने कहा—‘आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ ?
 अब के कैसे जादू हो गया । तू बताती क्यों नहीं ?’

माँ ने मुझे रुठा देखा तो मुझे छाती से लगा लिया । कहा: बेटा । बहुत
 दिन बाद वह दिन भी आगया । तेरे बाप के अनमोल बोल बिखरे पड़े हैं ।
 उन्हें तू बटोर लीजो भला ।

माँ को कितनी शांति मिल रही थी । मुझे तब मालूम न था कि वह पढ़ना
 लिखना नहीं जानती थी पर वह इतना जानती थी कि यह सब कुछ कीमती
 कीमती था, जिसकी रक्षा करना आवश्यक था ।

उस समय मैंने पूछा था : माँ ! तू ही क्यों नहीं लिखती ?

माँ ने कहा था । ‘बेटा ! मुझे उनकी बहुत सी बात याद है । ऐसी मन
 पर लकीर सी खिंची धरी है । तू लिखेगा न ? आ काम बाँट लें । मैं बोलूँगी

तू 'लिखेगा । ठीक है न ?'

'हाँ !' मैंने सिर हिला कर कहा था । माँ ने मुझे चूम लिया था । मन में पिता की धरोहर ही तो था !!

श्रीर फिर माँ लिखाती, मैं लिखता ।

उस दिन शाम हो गई थी ।

माँ बढ़ी सी नाँद में घड़े से पानी डाल रही थी ।

उसी समय द्वार पर मैं चिल्लाया : माँ ! देख तो, ले दादा आये हैं ।

माँ के हाथ से घड़ा छूट गया ।

मैंने देखा सिर टटायें हुए मुस्कराते हुए मेरे पिता ने कहा—फूटा कुंम बल बलहि समाना !

माँ ने लाज से माया टँक लिया और मुस्करा टटी । उस समय वह पूर्ण तृप्त सी खड़ी रही ।

पिता अचकचा गये कहा : मैं आ गया हूँ लोई ।

'तुम गये ही कहाँ ये कंत । मुझे तो यह याद नहीं कि तुम्हारे बिना भी मैं कभी यहाँ रही थी ।'

पिता की श्रॉँखों में श्रॉँख आ गये, जैसे वे इतने दिन बाद आज पूर्ण हो गये थे । उन्होंने गद्गद् स्वर से कहा—

जिन पावनः मुई+ बहु फिरे

घूमे देस विदेस

पिया मिलन जब होइया

आंगन भया विदेस ।

नीन गला पानी मिला

कति उ कति उ नीन

सुरत शब्द मेला भया
 काल रहा गहिमौन !
 कहना था सो कह दिया
 अब कछु कहा न जाय,
 एक रहा दूजा गया
 दरिया लहर समाय ।

और वे दोनों एकटक देखते खड़े रहे । दोनों के नयनों से आँसू बह रहे थे । मैं समझा नहीं । मैंने पिता का हाथ पकड़ लिया और कहा : अम्मा ! देख दादा आये हैं ।

माँ चौंक उठी । उसने आँसू पोंछ लिये । पिता के चरण छुए और ऐसे हँस कर खड़ी हो गई जैसे वे कहीं बाहर से नहीं आये थे, सिर्फ बजार होकर आये थे ।

पिता बैठ गये । मैंने देखा वे बेसुध से थे ।

मैंने कहा : दादा कहाँ गए थे ।

पिता ने मेरा सिर चूम कर कहा : बेटा मैं राम हूँ ढने गया था ।

‘कौन राम दादा ! मिला । कहाँ तक गए थे ? कहाँ मिला ?’

पिता ने मुस्करा कर कहा—‘मिल गया बेटा । बलख तक गया, पर कहीं नहीं मिला । वह तो मैं घर ही छोड़ गया था !’

‘घर में ? कहाँ है दादा ।’

‘करघे में है बेटा । यही अन्न देता है न ? मेहनत करके खाना ही राम-का रर है । और दूसरों की उससे सेवा करना ही उसका म म है । इसके अलावा कुछ नहीं है ।’

माँ पास आकर बैठ गई । कहा : कंत ! कमाल बहुत रोता था ।

‘भूँठी’, मैंने कहा—‘मैं रोता था कि तू रोती थी । तू ही तो कहती कि—’

‘छिः छिः बेटा । क्या कहता है ?’

मैं चुप हो गया तो दादा ने कहा : बता बेटा । कह न ? क्या कहती थी अम्मा !

मैंने माँ की ओर देखा । माँ मुस्करा रही थी । आँखों में मना कर रही

न, देना रहा था, पर होठों की मुस्कान में साहस भी तो दे रही थी। मैं
 काँटों की ओर देखा, कमीनों की ओर। पिता ने देना तो कहा :
 मैंने ही वह सन। मगवान भी तो मैं ही है। वह भी इतना ही स्नेही है,
 वह भी तो इतना ही पूर्ण है। लोई ! उसे मैं बाहर डूँढने गया था !

'मैं तो मैं कहती थी।' मैंने कहा।

मैंने मुँह फेर लिया, लडा कर। मैंने कहा : 'दया ! अम्मा कहती थी
 ते सदा बहुत अच्छे आदमी हैं पर मुझे एक ही दुख लगना है कि वे साने
 अम्मा होते हुए भी अपनी असुलियत को भूल गए। अगर हम माना भी
 है, तो उन्हें क्या कामों की तरह घर छोड़ आना चाहिए था ! लोभ भंड
 हम में जीटना या तो एकांत में जाकर क्या छोड़ना ! जहाँ भगवान की
 बगल है वहाँ तो उसकी साधना करनी चाहिए ।'

मिा हनु नर अवाक् रहे। फिर कहा : 'तू रटा है यह सभ, क्यों !

मैंने विवना था ।'

क्यों ?

'कहती थी अगर मैं मर गई तो पिता के मिलने पर यही कह दीजो ।'

मिा बैठ कर मैं की ओर देखते रहे। उनके गेनी में क्या था यह तो
 मैं नहीं बजता, पर मैं शर्मा गई थी। पिता ने बड़ी देर तक देखा था और
 फिर उन्होंने धीरे से कहा था, 'ठीक कहती है लोई। जो हस की तरह दूध
 पानी अटक कर लेता है, वही पार उतर पाता है। गाहेब का ही तो दीदार
 सब बगद दिखाई दे रहा है। उनकी पनाई मुनियों में अपने मन के मौल की
 छोड़ी को माया बना कर दूररी पर भोपना पाप ही तो है। शाभा नम मश
 ही हलकता है बंटा। लोई ठीक कहती है। पानी से ही हिम बनती है, हिम
 ही गल कर पानी बनता है। जो होता है वही बनता है, फलन लाभक कुछ
 भी नहीं रहता बेश।

और वे धोल ठटे—

गगन गरजि वरसै अगी वादल गहिर गंभीर ।

चहुँ दिशि दमकै दामिनी भीजै दास कबीर ॥

अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहि
कविरा जब हम गावते तब जाना गुरु नाहि ।

और पिता ने कहा : लोई ! बहुत दिन पहले तूने कहा था न, तो मुझे अब मालूम हुआ है । मैं जब एक से लगा, तो सब एक होगया । सब मेरा हो गया, मैं सब का हो गया, मुझे आज कोई दूसरा दिखाई नहीं देता ।

माँ उठी । रोटी ले आई ।

मैंने कहा : माँ ! तू क्या खाएगी । रोटी तो यह तीन ही थीं ।

माँ ने मुझे फटकारते नयनों से देखा ।

परन्तु पिता के नयनों में फिर आँसू आ गए । कहा : लोई ! बैठ ! आज हम तीनों मिलकर खायेंगे । दूर-दूर तक भटकता रहा हूँ । आज प्रकाश मिल रहा है तो उसे पूर्ण अविनासी हो जाने दे । वह प्रेम और संसार में ही मनुष्य को मिलता है । वह रहस्य है और अगम है, सबके परे है, परन्तु उसका अंतिम सान्निध्य इस ममता और निष्कलंक प्रेम में ही है । वह भटकन जो इस प्रेम को बुरा कहती थी उसने मुझे संन्यासियों की तरह भीख माँगकर जंगल, वन, ग्राम, पहाड़ों पर ढोंगियों और अतृप्त छुटपटाती आत्माओं के साथ घुमाया । वही माया थी । वह अहं ही माया का मूल था । वह माया, घृणा का ही परोक्ष रूप थी । उसने सहज सत्य को ढँक लेना चाहा । मैं उस माया को छोड़ आया हूँ । मेरा साँई यहीं है लोई । वह माया टगिनी नैना भ्रमका कर रोक रही थी । उसने बड़े बड़े ज्ञानियों को डुलाया है, उसने हाथ की मुट्ठी में सार तत्त्व को बंद करवाके, त्रिभुवन में चक्कर लगवाये हैं । बड़े-बड़े महा-त्माओं को उस मन के भय ने कभी स्त्री, कभी बालक, कभी घर, जाने क्या क्या रूप धर कर डराया है । गोरख, मच्छेन्द्र, दत्तात्रेय, राम सब उसके चक्कर में फँस गए । साँई ने मेरी रक्षा कर ली है । लोई ! साँई ने मुझे बचा लिया । मेरे यहाँ तू थी । तूने मुझे बताया है—और पिता ने अत्यन्त व्याकुल परन्तु विभोर स्वर में कहा—

हरि से तू जनि-हेत कर

कर हरिजन से हेत

माता मुलुक हरि देत हैं
हरिजन हरि ही देत ।

माँ बैठ गई । पिता ने एक एक रोटी बाँट दी । मैंने कहा : चाग्रो दादा ।
तुम्हें मालूम है माँ मुझे तुम्हारा कौन सा गाना सुनाती थी ।
मा ने कहा : तू खाना है कि भाव करता है ।
पिता ने कहा : क्या गाती थी बेटा ।
मैंने धीरे से कहा :

प्रीतम को पतिर्याँ लिखूँ
जो कहूँ होय विदेस
तन में मन में नैन में
ताको कहा सँदेस ।

पिता ने सुना तो रोटी रख दी । झूमने लगे । कहा : लोई ! याद !
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास
तिनका तिनका से मिला तिनका तिन के पास
और माँ ने धीरे से कहा : याद है । उस दिन क्या कहा था तुमने—
सौ योजन साजन वसै
मानौ हृदय मंभार,
कपट सनेही आगने
जानु समंदर पार ।
यह तत वह तत एक है
एक प्राण दुई गात,
अपने जिय से जानिये
मेरे जिय की बात ।

पिता ने कहा : लोई ! आत्र में मुक्त हो गया हूँ लोई । आत्र कोई फाँव
होती रती—

कविरा हम गुरु रस पिया वाकी रही न द्याक,
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़ली चाक ।
तब माँ के कदने से हम खाने लगे थे । एक-एक दी तो रोटी थी । सतम

हो गई। माँ ने और पिता ने पानी पिया। मेरा पेट तो वह मोटी रोटी खाकर भर गया। पर वे दोनों भूखे रह गये ?

माँ ने पूछा नहीं कि पिता कहाँ कहाँ गये थे। मुझे कौतूहल हो रहा था। मैंने मौका देखकर पूछा : दादा !

‘क्या है रे !’

‘तुमने क्या क्या देखा दादा !’

‘कुछ नहीं देखा वेटा। जो देखने लायक था वह तो घर में ही था। सब चलने चलने की कहते थे, मुझे अँदेसा तो होता था, कि जब साहब से ही परिचय नहीं है, तो कौनसी ठौर पहुँचेंगे, बाट बिचारी क्या कर सकती है अगर पथिक सुधार के नहीं चले। अपनी राह छोड़ कर कोई दूर दूर चलने लगे तो ? ऐसा कोई न मिला जो हमें उपदेश देता। ऐसा कोई न मिला जिससे मन लग कर रहता। सबको मैंने अपनी आग में ही जलते हुए देखा। जैसी कथनी हो वैसी ही करनी भी चाहिये कमाल !’

मैं समझा नहीं। माँ जरूर सुनती रही। उसने कहा : भूल क्यों नहीं जाते उस सबको।

पिता क्षण भर माँ की ओर देखते रहे। कहा : लोई मैं क्या करूँ। तेरा संग पाकर भी मैं न सुधरा।

संगत भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर
नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर।
गुरु विचारा क्या कुरै शिष्यहि में हैं चूक
शब्द वाण वेधे नहीं, वाँस वजावै फूक।

माँ ने कहा : तुम सच नहीं मानोगे।

वह प्रसन्न थी। वह आनन्द तो मैं नहीं समझा था, पर आज तक वह चेहरा नहीं भूला हूँ। आज मुझे याद आने पर लगता है कि वह तो माता धरती थी, खूँदी गई, रौंदी गई, सूरज ने तपाया, पवन ने धू धू करके अंग अंग की चाम को छार छार कर दिया, पर जब बादल आया और बरसने लगा, तो उसने एक भी शब्द नहीं कहा कि तू कहाँ चला गया था। बादल बरसा रोम रोम

सिंचित कर गया । धरती हँस उठी । उसने फिर फूलों की भङ्गी लगाई ।
और मैं क्या कहूँ—

आसमान का आसरा छोड़ प्यारे उलटि देखो घट अपना जी
तुम आप में आप तहकीक करो तुम छोड़ो मन की बल्पना जी
बिन देखे जो निज नाम जपे सो कहिए रेन का सपना जी
कबीर दीदार परगट देसा तव आप कौन का अपना जी ।

आरम्भ

शाम हो गई थी। विश्वनाथ के मन्दिर में घण्टे बजने लगे थे। घननन घननन का नाद गूँज रहा था। बाहर बने विशाल नंदी काले पत्थरों के कारण चमक रहे थे। मन्दिर के विशाल स्तम्भों पर अंधेरे की छायाएँ पड़ने लगी थीं। और दीपाधारों में लटकती दीपशिखाएँ जगमग जगमग कर रही थीं। असंख्य दर्शनी आते, घण्टों को बजाते और फिर भीतर चले जाते, शिव-लिंग का दर्शन करते और लौट आते। भीतर से कभी कभी समवेत वेदध्वनि उठती और तब गंधधूम और फूलों की सुगन्धि काँपने लगती।

पथ पर एक सोलह बरस का लड़का खड़ा था। वह डरता हुआ सा देख रहा था। हठात् वह आगे बढ़ आया। उसने कहा : काका !

‘कौन ?’ एक अंधेड़ आदमी ने मुड़ कर कहा : ‘कबीर !’

‘हाँ काका, मैं ही हूँ !’

अरे तू यहाँ क्या कर रहा है !’

‘कुछ नहीं ! वैसे ही खड़ा था ।’

‘लेकिन यह वैसे ही खड़े होने की जगह तो नहीं। वह तो गनीमत है

श्रागे जाकर अपना आसन नहीं जमाया, वर्ना बुरे हाथ पड़ते ।’

‘क्यों ?’

‘जैसे तू जानता नहीं । तू जुलाहा, मैं जुलाहा । कौन नहीं जानता कि यहाँ के पुजारी कितने कष्ट हैं ! कोई देख लेता तो भावेला मच जाता । काशीराज तक खबर पहुँचती । वे सारे जुलाहों को आड़े हाथों लेते । और मेरी तो आपत्त ही थी । मैं ठहरा देवीलाल, उनके मनसबदारों का जुलाहा । मुझसे कहते : क्यों देवी ! तूने भी जोगियों के असर में सिर उठाया है ? क्या कहता मैं कबीर ! चल बेटा घर चल ।’

‘डरते क्यों हो काका ?’ कबीर ने कहा—‘मैं क्या भीतर थोड़े ही जाता था । पर हमें ये इसी से तो नहीं जाने देते न कि हम नीच जात माने जाते हैं ? काका हम नीच जात क्यों है ?’

देवीलाल ने कहा : शश...धीरे बोल बेटे । तूने इनका घमण्ड नहीं देखा ।

‘घमण्ड ?’ कबीर ने कहा ‘मैं देखता आया हूँ आज । दावत हो रही थी । भूँटन निक रही थी । बाहर भंगी बैठे थे और वहाँ टाकुर ऐसे भूँटन फँकता था कि कुत्ते और भंगी के बच्चे साथ-साथ भपटते थे । कितना भयानक लगता था वह सब ! इतने बेरहम यह कैसे हो जाते हैं काका ?’

काका देवीलाल ने कहा : ‘चल बाहर । रुके मत तू कबीर ! शरीब की हर जगह आपत्त है । जिस पर जात अगर नीच हो गई तो समझ ले सत्यानास हो गया । क्यों, तू क्यों मरता है ?’

‘मैं मरता नहीं काका । सोचता हूँ । यह तो बड़ा महन्त है न ?’

‘हाँ बेटा उसका बड़ा मान है ।’

‘मान है, पर काम तो उसके बड़े नीच हैं काका । सुबह कहारिन को छेड़ रहा था । यह रो रही थी ।’

‘कोई कुछ कह रहा था ?’

‘कुछ नहीं ।’

‘देख ले तू ही । अमी तीन दिन पहले की बात है । पंडों ने श्रीरत के जेवर उतार लिए और ल्हास गंगा में उतार दी । जिजमान रोता चिल्लाता

लौट गया। कोई सुनता है ?

‘काका ! वे पण्डित जी जो गङ्गा तीर पर कथापुराण सुनाते हैं, वे तो दया धरम की बात करते हैं ?’

‘क्या कहता है वह ?’

‘यही कि ब्राह्मण की पूजा करो अपना लोक परलोक बनाओ ।’

‘सो तो ठीक कहता है वह। सब मानुस एक से तो नहीं होते कबीर ।’

‘पर मुझे यह सुनकर अजीब सा लगता है। क्या सचमुच हम इन लोगों से कुछ नीचे हैं ?’

देवीलाल उत्तर नहीं दे सका। वह आगे चलता रहा। कबीर ने ही फिर कहा : जिसके संग दस बीस हो जाते हैं वही महन्त हो जाता है काका।

‘बड़ा बातूनी है तू रे !’

‘काका मैं तो बदला लूँगा ।’

‘किससे ?’

‘उसी महन्त से !’

‘किस बात का ?’

‘काका, तमाम पुजारी यहाँ वहाँ जगह-जगह खूब पैसा लूटते हैं। यह मंदिर है ? छूआछूत तो ऐसी जबरदस्त है कि देख कर मेरा दिल काँप जाता है। परंतु इनके कर्म तो इतने नीचे हैं कि कहा नहीं जाता। पाखण्ड, धृष्टा, अहंकार, और ईर्ष्या ही इनके भीतर भरी हुई है।’

‘भरी हों तो वे अपना फल आप पायेंगे कबीर। तुम्हें ओखली में सिर देने की जरूरत ही क्या है बेटा ? भगवान को ही सुख देना मंजूर होता तो वह नीचे कुल में हमें जनम ही क्यों देता ? और जब जीवन में नरक पाया ही है तब उसे चुपचाप भोग कर अगला जनम क्यों न ठीक बना लिया जाए ?’

जुलाहों की बस्ती आने लगी। देवीलाल चला गया। कबीर खड़ा रहा। वह अभी घर जाना नहीं चाहता था। अभी उसके भीतर तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। जब वह घर पहुँचा तब आधी रात थी।

कबीर धीरे से टट्टी हटा कर भीतर घुसा ।

'कौन है ?' नीमा ने बिस्तर में पड़े-पड़े पूछा ।

'मैं हूँ अम्मा !'

'कहाँ चला गया था बेटा ?' बृद्धा ने खॉंसते हुए कहा । 'तेरा बाप जब से चला गया तब से मैं ही तो हूँ । क्या तुझे मेरी याद नहीं आती ?'

'अम्मा !' कबीर ने उसके पास बैठकर कहा : 'कैसी घात करती है ! मैं गया ही कहीं था ?'

श्रीर उसकी आँखों में बृद्ध नीरू का चित्र खिंच गया । वही तो उसका पिता था, पालने वाला था । माँ ने ममता में कितना मर्मांतक आघात किया था ।

नीमा खॉंसने लगी । खॉंसते खॉंसते उसकी आँखों में पानी आ गया ।

कबीर को लगा खांसती माँ थी, पर फंदा उसकी अपनी मीया में अटक रहा था । उसने खाट पर बैठ कर माँ को सहारा दिया । पानी पिलाया । कुछ देर बाद जब नीमा सुस्तियर हुई तो उसने कहा : बेटा !

'क्या है माँ !'

'जानता है मैं बूढ़ी हूँ ।'

'नहीं, मुझे यह भयानक घातें नहीं सुननी है ।'

माँ हँसी ! यह दुलार की उमड़ती धारा थी । कहा : बेटा ! अब मैं शियूंगी भी तो कितने दिन, आखिर तुझे कोई तो सहारा चाहिये । रोटी कौन करेगा तेरी ?

'मैं खुद कर लूंगा अम्मा ! तू फिर न कर ।'

'अच्छा सुसरे ! मैं अब बन्द कर दूंगी, तौ दो दिन में तुझे आटे दाल का भाव मासुम पड़ जायेगा ।'

बृद्धा हँसी ! कबीर भी । बृद्धा ने कहा : बेटा ! तू माँ को चाहता है,

उसके बारे में कुछ भी बुरा नहीं सोचना चाहता न ? पर एक बात याद रख ले जैसे एक दिन तेरा बाप चला गया, वैसे ही एक दिन तेरी यह माँ भी चली जायेगी और बाप की कमी को तो वेटा मैंने खलने न दिया, पर मेरी कमी को पूरा करने के लिये क्या तुझे किसी नये सहारे की जरूरत नहीं है ?

कबीर नहीं बोला । लगता था वह सोच रहा था । मृत्यु आयेगी । वह अवश्य आती है ।

और जिस क्षण मनुष्य की जीवन की ममता और शक्ति टहरकर मृत्यु के बारे में सोचने लगती है उसी क्षण उसमें एक नयी तन्मयता जाग्रत हो उठती है, जो जीवन का सम्मान करना जानती है ।

मां ने फिर कहा : वेटा ! इस दुनिया में कोई किसी का सहारा नहीं होता, पर घर वाले ही उन सबके मुकाबले में अपने होते हैं । मरे की मिट्टी तो अपना धरम संभालता है, पर जीती मिट्टी के लिये भी तो करने वाला कोई होना चाहिये । तू बाहर से आता है, उस वक्त कोई दो बात पूछने को न होगा, तो तुझे यह घर काटने को दौड़ने लगेगा कबीर ! आदमी चाहता है कि कोई उसके सुख दुख में सवाल जवाब करे। तू रुठे कोई मनाये । कोई और मान करे, तो तू उसे समझाये। वेटा, आपस की प्रीत से ही यह दुनिया हल्की होकर चलती है ।

‘तू यही बातें करती रहेगी या मुझे कुछ खाने को भी देगी?’ कबीरने कहा ।
माँ हँसी और फिर खॉंसी ने घेर लिया ।

कबीर ने देखा, वह कंकाल खॉंसी की चपेट में थरा उठता था । जैसे साक्षात् मृत्यु ने बुढ़ापे के जाल में फँसा लिया था और बार बार भ्रुकभोर उठता था । जीवन क्या सचमुच ऐसी ही दीर्घ यंत्रणा थी । कबीर को लगा वहाँ मां नहीं थी, एक प्राणी अपने जीवन के लिये मृत्यु से संघर्ष कर रहा था । वह चित्र भीतर उतर गया । जब पिता मरे थे, उसका चित्र उसे याद नहीं है। तब वह सात बरस का था । तब से अपमान में वह जीती रही है । उसने चक्की पीसी है, ताना बुनकर बाना डालना उसी ने कबीर को सिखाया है । उसका ही सिखाया कबीर वस्त्रों को लेजा लेजा कर बाज़ार में बेचता रहा है । जो कुछ आमदनी होती रही है, उसी से दोनों किसी तरह पेट भरते रहे

हैं। कमी कमी जब किसान आते हैं तब काशी के जुलाहों में जान में जान आती है। घना सिपाही आते हैं तो मन चाहे मोल उठा ले जाते हैं। उनकी बात सुनने वाला कोई नहीं। किसान लगान देते नहीं यकता, चमार बेगार देता है। जगह जगह बधन है, अछूत हैं, और कबीर जुलाहा बैठा बैठा देखता है कि ऊँची जात के लोग, मुसलमान सिपाही, सब, सब ही जुलाहों को दबाते हैं और वे दबते हैं। लेकिन क्यों ?

कबीर मां की पीठ सहलाने लगा। बूढ़ी कुछ देर में ठीक हुई और उसने धीमे से कहा : 'रोटी वहाँ हैंडिया में कपड़े में लिपटी रखी है। ले ले। मुभते उठा नहीं जाता। हे भगवान ! बुला क्यों नहीं लेता ?'

वह फिर कहने लगी—'बेटा ! मेरी मान जा बूढ़ी की असीस ले। छोटी सो बहू ले आ फिर देख तेरे अँगन में कैसा उजाला हो जायेगा।'

'अच्छी बात है मां', कबीर ने कहा : 'पहले रोटी खालूँ फिर विचार करूँगा।'

'तेरी मर्जी।' बुढ़िया ने कुछ खीभ कर कहा, जैसे इतनी मेहनत उसने व्यर्थ ही की थी, जैसे वह तो रस्सी सरकाती गई, पर घड़ा पानी में नहीं, सूखे कुए की तह में जाकर टकराया। और वह फिर लेट गई।

कबीर रोटी लेकर बाहर हल्की चाँदनी में आ गया। और खाने लगा। उस समय पीछे किसी की हल्की पगचाप सुनाई दी।

'कौन ? लोई ?' कबीर ने कहा—'इस समय ? जानती है कौनसा पहर है ?'

वह पतली दुबली पन्द्रह साल की लड़की अपने भैले लँहगे को समेट कर बैठ गई और कहा : 'मुभते पूछते हो ? तुम्हें क्या पहर घड़ी की चिंता नहीं ? मैं कबसे बैठी तुम्हारी राह देख रही हूँ।'

'क्यों ?' कबीर ने कहा—'सोई नहीं ? घर के लोग कहाँ गये ?'

'सो गये। सबकी अकल मेरी तरह खराब तो नहीं।'

कबीर ने हाथ रोटी से अलग करके कहा—'तू तो कमी ऐसा नहीं कहती थी लोई। आज कैसे कहती है ?'

'कहती हूँ यों कि मेरी बनाई चटनी पत्ते पर रखी सूख गई और मैं बैठी रही कि कब तुम आओ, कब खिलारजोँ। जानती हूँ मां बीमार है। तुम्हें तो

कोई फिकर नहीं। बेचारी दिन रात खटती है। मुझे तो दर्द होता है।'

कह कर उसने पत्ता हाथ से निकाल कर सामने रख दिया। बोली :
चख के देखो, फितनी अच्छी बनी है !

कबीर ने खाकर कहा : 'बहुत स्वाद की बनी है लोई। माँ के बाद मुझे
तेरे ही हाथ का बनाया अच्छा लगता है।'

लोई लजा गई। कहा : 'क्या बकते हो। आधी रात के बखत कोई
ऐसे कहता होगा। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?'

कबीर ने टांका : 'अरे मैंने ऐसा क्या कहा है रो जो इतना घुड़कती है ?
अभी तो तुझे माँ के लिए दर्द आ रहा था न ?'

'अच्छा तुम्हें नहीं आता ?' लोई ने पूछा।

'क्यों नहीं आता लोई। मैं क्या बैठा रहता हूँ ? तू बता। मैं दिन रात
बुनता रहता हूँ, तब कहीं जाकर पेट भरता है ! तू क्या जुलाहिन नहीं है, तू
क्या हालत नहीं जानती ?'

'मैं सब जातनी हूँ पर रोती नहीं तुम्हारी तरह। तुम्हें तो रट लग जाती
है तो बस लग ही जाती है।'

माँ ने पुकारा : 'वेटा कबीर !

'हाँ अम्मा आया।' कबीर ने उत्तर दिया।

'क्या कर रहा है वेटा वहाँ ! अरे ओस गिर रही है। वहाँ तेरे पास
कौन है वेटा ?'

'माँ लो'.....

'छिः' लोई ने मुँह पर हाथ रख दिया—'चिल्लाते क्यों हो। ऐं
बदनाम क्यों कराते हो। नहीं समझते तो चुप रहो।'

कबीर ने मुस्कराकर कहा : 'आया अम्मा लो। अभी अभी आया।

लोई ने कहा : 'मेरा नाम यों चिल्लाते हो, पहले इसका हक पाठ
कबीर। ऐसे ही आधी रात को न अलख जगाने दूंगी मेरे नाम की।'

'अच्छी बात है लोई।' कबीर ने कहा : 'तेरा दादा न मानेगा तो ?'

'क्यों न मानेगा ? तू क्या जुलाहा नहीं है ?'

'हूँ तो।'

'फिर आदमी कि है जानवर है !'

'आदमी सा ही लगता हूँ, पर यह तो तेरे माई बंधों पर है, ये तो उसे ही आदमी मानेंगे जो ठन जैसे होंगे ।'

'क्या मतलब ?' लोई ने खीक कर कहा—'ये तुम्हारी मत में मानुस नहीं है !'

कबीर ने कहा : जा परमेसुरी ! ताना खेंचती है तो आसत करती है ।

'कैसे चली जाऊँगी । आधी रात तक क्या मैं चटनी लिये बैठी थी !'

'तो !'

'तुम्हें हया नहीं लाज नहीं, मुझसे कहलाते हो ।'

'आगिर बात क्या हुई कह न !'

'दादा भेरा स्याह तय कर रहे हैं । तुम क्यों नहीं अम्मा से कहलवाते ?'

'क्या कहलया हूँ ?' कबीर ने पूछा—'यही ठीक रहेगा कि हमारे घर में आदमी कम है । एक चटनी पीसने वाली चाहिये । ठीक रहेगा !'

लोई मुस्कराई । कहा : 'मैं तुम्हें इतनी लड़ाका दिखती हूँ, क्यों ! मेरा क्या है । रुखी सूनो खाओगे आप बुद्धि टिकाने लग जायेगी ! अच्छा मैं बताती हूँ ।'

'उह्र लोई । दिन भर के बाद अब तो मिली है ।'

'मैं तो पहले भी मिल सकती थी । पर गुम ही चले गये थे ।'

'बहों गया या जानती है !'

'नहीं ।'

'मैं मरपट गया था ।'

'दाय राम !' लोई ने कहा—'मैं भी तो पूछूँ क्यों ?'

लौट रहा था लोई । रास्ते में मैंने मुर्दा बाते देता । कोई बूढ़ा था । बड़ी भालर वालर बजा कर ले चारदे थे । मैंने सोचा क्या बात है । जाकर देखनी तो चाहिये, सो चला गया ।'

लोई हरी सी बैठी रही ।

'तू बोलती क्यों नहीं ?' कबीर ने पूछा ।

'मैं अब बोलूँ भी क्या !'

‘क्यों ?’

‘तुम तो जोगी हो रहे हो !’

कबीर उसके मुख को एकटक देखता रहा । लोई ने धीरे से कहा—‘ऐसे न देखो मुझे डर लगता है ।’

‘क्यों ?’ कबीर चौंक उठा ।

‘इस तरह देखते हो मुझे कुछ पराया समझते हो । अविश्वास से कुछ जो झूढ़ते से लगते हो, तो मुझे लगता है कि मैं तुमसे बहुत दूर हूँ । यह मुझे अच्छा नहीं लगता ।’

कबीर ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—‘लोई ! मैं तुमसे दूर नहीं हूँ । मैं अपने आपसे जब दूर होने लगता हूँ तब मुझे कुछ डर सा लगने लगता है ।’

‘अपने आपसे कौन दूर होता है भला !’

‘मैं होता हूँ लोई । राह पर चलते हुये लगने लगता है कि देह जली जा रही है और इस शकल सूरत का आदमी जो कबीर कबीर कहलाता है, वह असल में कोई और ही है, जिसे जानना चाहिये । और मरघट में मुझे वहाँ जान पहचान सी लगी । मुझे लगा मैंने वहाँ इतना दुख देखा, इतना दुख देखा कि मुझे जीवन में एक विश्वास सा हो गया है ।’

‘विश्वास !’ लोई ने धीरे से कहा—‘जो इसे खो देते हैं वे कभी चैन नहीं पाते, ऐसा दादा कहते थे ।’

‘तू समझती है लोई ।’ कबीर ने आश्चर्य से पूछा !

‘नहीं ।’ लोई ने कहा—‘कुछ नहीं समझती, पर तुम्हें समझती हूँ ।’

दोनों निस्तब्ध से एक दूसरे को देखते रहे । लोई ने धीरे से हाथ अलग कर लिया । कबीर ने कहा : कहाँ जाती है लोई ?

‘अब मैं तब ही आऊँगी कबीर ! जब तुम मुझे दिन दहाड़े हजार जुलाहों के बीच सामने से बाजे बजवा कर लाओगे । अब चटनी बंद ।

तभी मां ने पुकारा : अरे आया नहीं बेटा....’

‘आया अम्मां....’ कबीर ने कहा, और लोई पाँव दबाती हुई चली गई....‘चुपचाप....’

होली आ गई थी। काशी की सड़कों पर आज धुंध सी मच रही थी। फूल के अंभार उठ रहे थे और भोंग और शराब के नशे में चूर, अमीर और गुलाल उड़ाने वाले लोग टोलियों बना कर गाते, ढोल बजाते, नाचते जा रहे थे। बच्चे रंग फेंकते। औरतें छतों पर बैठी थी और घूंघट लीचे रंग डालती थीं, नीचे सड़कों पर मर्द नाचते थे। चारों ओर हुड़दंग मच रहा था।

नीमा मुबह से ही बैठी थी। उसने पुकारा : बेटा कबीर !

'क्या है अम्मा !' कबीर ने पास आकर कहा।

'बेटा ! तू नहीं गया कहीं ?' माँ ने कहा।

'कहाँ जाऊँ अम्मा !' कबीर ने कहा : 'सब लोग तो भोंग पीकर झूम रहे हैं। मुझे नशा करना अच्छा नहीं लगता।'

बात तीर सी लगी।

कुछ देर बाद कबीर लिसक चला।

उदास सी छत की मुँडेर के पीछे लोई बैठी सी रही थी।

कबीर स्वस्थ सा देखता रहा। फिर धीरे से कहा : लोई !

उसने मुड़कर देखा। कहा कुछ नहीं। फिर टोरे को मुँह में रक्ता छीन उसका होंर बंदने लगी।

कबीर ने फिर कहा : लोई !

'क्या है !'

'तू क्या सोच रही है !'

'कुछ नहीं।'

उसका मान आब साधारण नहीं था। कबीर उसके पास बैठ गया। इधर छत कोच में पड़ गया था। उसके माथे पर बल से पड़ गये थे। उसका मान देख कर लोई को चिंता होने लगी। उसने उसकी आंग न देखकर कहा : क्या सोच रहे हो !

‘कुछ नहीं,’ कबीर ने कहा ।

लोई मुस्कराई । कहा : ‘तुम बड़े चालाक हो, मैं जानती हूँ ।’

‘क्यों लोई ?’ कबीर ने कहा : ‘तूने मुझे सीधे जवाब दिया था ?’

लोई की मुस्कान फिर ढह गई । कबीर ने देखा । हाथ पकड़ कर कहा :
तुझे कुछ दुख है लोई ?

‘दुख !’ लोई ने कहा : ‘क्यों होने लगा मुझे ?’

श्रीर उसने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा : तू समझता है मैं कुछ जानती नहीं । क्यों ?

उस ‘तू’ में विक्षोभ था, क्रोध था, परन्तु हृदय के स्वत्वानुभव की अनुभूति थी । ‘तू’ सुनकर कबीर चौंका नहीं । भरे-भरे नेत्रों से देखता रहा ।
फिर पूछा : क्या जानती है ?

‘मैं पूछती हूँ तू किस लिये कमाता है ?’

‘पेट के लिये लोई ।’

‘किसके ?’

‘अपने और मां के ।’

‘बस ?’

‘और तो अभी घर में कोई नहीं ।’

‘और जो आयेगा उसके लिये तेरे पास क्या है ?’

‘मेरा हिया ।’

लोई ने सिर हिला कर कहा : ‘अरे मैं पहले ही तेरी बातें जानती हूँ ।
यों नहीं बहलूँगी । कुछ मेरा बाप भी तो कहेगा ! विरादरी क्या कहेगी ?
तू कल अपने पैसे उस लंगड़े और अंधे सूरा को दे आया था, परसों मैंने
देखा था तूने चार कौड़ियां एक साधू को दे दी थीं । तू बड़ा दाता है न !
ला मेरे लिये क्या लाया है ?’

‘तेरे लिये ?’ कबीर ने कहा—‘मैं तेरे लिये इन सबसे अच्छी चीज लाया
हूँ । देख ! यह है । बोलती मिट्टी ।’

‘कौन ?’

‘मैं हूँ, जो !’

लोई हतमम नहीं हुई। उसने कहा : 'पिक है त्तो, भी बोल कर भी मिट्टी ही बना रहा, मानुस न हुआ।'

'लोई !!!' कबीर के मुख से दृढात् निकला। राज उसी जैसे पिचली दीह गईं। 'लोई !!!' उसने फिर कहा। मानो फिर उपाहा गला संभ गया और कुछ कह नहीं सका।

लोई ने कहा : 'आज तू मुझसे होली खेलने आया है न ?'

'हाँ लोई ! पर मेरा मन इस मुसलमन में रमता नहीं।'

'क्यों ?'

'यह सब मुझे चलता हुआ दिखाई देता है। देखता हूँ संसार में घोर अन्धकार हो रहा है। यश करने वाले अज्ञ को जलाते हैं, जोगी जीवन बिताते हैं तो बगद-बगद घूमते फिरते हैं। ब्राह्मणों का अहंकार नीच जाति नीच जाति कहकर हमारा अपमान करता है। हम पुगी हैं तो क्या आदमी नहीं हैं लोई। मुसलमान रोज लोगों को बटकाते हैं, गरीब लोग हाहाकार कर रहे हैं। चारों तरफ मजबूरियाँ लड़ी हैं। मैं देखता हूँ तो एक गुलामन सी उठ लड़ी होती है। तुम्हें कोई चिंता नहीं होती ?'

'किसकी ?' लोई ने पूछा।

'यह वो दुनियाँ में इतनी बेचैनी फैली हुई है ?'

लोई मुस्कराई। कहा : 'मुझे उस सबकी बेचैनी नहीं होती, केवल एक बेचैनी होती है।'

कबीर ने प्रश्न वाचक दृष्टि से देखा।

लोई ने कहा : 'केवल यही कि तू बेचैन रहता है। पुगी पुलादे क्या और नहीं हैं वो तू इतना व्याकुल है। मैं पूछ सकनी हूँ 'काजी की क्यों राह के अंदरे से इतने दुबले हैं ?'

'तू छी है,' कबीर ने कहा—'माया तेरे घट घट में है।'

लोई ने कहा : 'साधुओं ने तुम्हें धीरा दिया है कबीरे। अगर छी माया है तो पुरुष क्या है ? सब भटक रहे हैं। मिट्टों की सी अटपटी न नापों कापासकों की तरह डराने की कोशिश कर। बंग

जादूगरनियों की बात सुनती आई हूँ। वह सब भूँठ होगा। लोग चाहते हैं कि कुछ कर दिखायें, पर राह नहीं मिलती। गरीब का क्या? तू पागल है। ऐसी बात करके तू मेरा अपमान करता है, उसे तू जानता नहीं, खैर, मैं उसे पी जाऊँगी, पर मुझे यों न सता कि जाकर मरघट में बैठा ल्हासों को जलता देखा करे। अरे यहाँ इतने जीते हुए हाथ पाँव चलाते हैं, वे तुझे आश्चर्य से नहीं भरते? तू मिट्टी को जलते देख के डरता है, मिट्टी को हंसते रोते देख कर तुझे अच्छा नहीं लगता?’

‘यह एक मेला है लोई! लगता है, उठ जाता है। जो इसी में भूला रहता है, वह क्या जान सकता है? इसी को सब कुछ समझ लेने से ही तो आगे चल कर इतना दुख होता है।’

‘दुख!’ लोई ने कहा—‘तू जानता है दुख क्या है?’

कबीर ने धीमे से कहा—‘इस दुनियाँ की रीत उल्टी है लोई। यह रंगी को नारंगी और माल को खोया कहती है। जो चलती है उसे गाड़ी कहती है, बता इस सबको देख मैं अगर रूँ आसा हो जाता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ।’

‘बात के फेर में पड़ा तू अपने को भूल रहा है।’

‘नहीं लोई।’ कबीर ने कहा : ‘सुबह सुबह जब तू चक्री चलाती है तब मेरा दिल काँप उठता है। दो पाटों के बीच में आकर कोई नहीं बचता।’

‘जगत का नाता तोड़ कर ही क्या चैन मिल जाता है कबीर? माना कि मैं माया हूँ, पर मुझे किसने बनाया?’

‘भगवान ने!’

‘और तुझे किसने बनाया?’

‘उसी ने।’

‘तो मैं तू जब एक से हूँ, तो मुझसे अभिमान करने का हक रखता है?’

‘नहीं।’

‘फिर मुझे क्यों जलाता है?’

लोई की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा : ‘तू उद्दास रहता है। खोया खोया रहता है। आखिर क्यों? सच तुझे मन में कभी कुछ कुछ सा नहीं होता?’

‘होता है लोई ।’

‘तो फिर तू दूर दूर क्यों रहता है कबीर !’

कबीर ने लोई के आँसू पोंछ दिये । लोई गर्व से नीचे देखने लगी । कबीर ने कहा : ‘अब भी तुम्हें दुख है ?’

‘नहीं ।’ लोई ने कहा — ‘तू कहता है मैं माया हूँ । मुझे माया ही कह, पर जो माया भगवान ने बनाई है, वह क्या इसी लिये अच्छी नहीं है कि वह बाँधे रखती है, उसी भगवान की सीगात है । बाबरे ! मैं न होऊँ तो यह संसार की माया बदेगी कैसे ? कैसे सदा सदा, युग युग तक आदमी भगवान की चिंता करेगा, कैसे उसका नाम इस धरती पर गूँजा करेगा, कबीर !’

‘क्या है लोई ! तू मुझसे क्या क्या कह जाती है । मैं इतना सब गुन कर आता हूँ । वह सब क्षण भर में तेरे सामने लरब सा जाता है । तू माया कहाँ है लोई ! तुम्हें देखता हूँ तो मुझे बंधन नहीं लगता, सहारा सा मिलता है ।’

‘मैं नहीं समझती कि यह क्या है । यही तो वह लगन है जो मुझे तेरा बनाये रखती है । मैं तेरे पास रहूँ तो क्या तुम्हें पाप लग जायेगा ?’

‘नहीं लोई । कभी नहीं । तू इतनी पवित्र है ।’

लोई शर्मा गई । कहा : तू है संन्यासी ही । यह न भूल कि मैं तेरी कौन हूँ । हूँ कुछ ?’

कबीर उसे मुस्कराता हुआ मरी मरी आँखों से रहस्य मरी मुस्कान लिये देखता रहा । देखता रहा । लोई ने माये पर घूँघट खींच कर मुस्करा कर कहा : ‘सब कह । फिर तो मेरा खून नहीं जलायेगा ?’

‘नहीं ।’ कबीर ने कहा ।

‘तो जा सबके संग होली खेल । मैंने तेरे लिये गुंजिया छिपाकर रखी है तू रंग में भींग कर आ, मैं तुम्हें अपने हाथ से खिलाऊंगी ।’

‘अब तो मैं रंग गया लोई ।’

‘कैसे ?’

‘तेरे रंग में ।’

‘यही नहीं चाहती मैं ।’ लोई ने कहा—‘यही मुझे डराता है । मैं दुनिया में सब कुछ नहीं हूँ कबीर । जैसे तेरे लिये बहुत कुछ है, वैसे ही उम सब ~’

मैं भी हूँ। ये जो घर छोड़ कर भागते हैं, वे एक आँख से दुनिया को देखते हैं। अगर वे मन का तोल बराबर रखें तो लोगों का लाभ हो, नहीं तो हों और ना के पलड़े हमेशा होड़ करते रहते हैं। एक तरफ मरघट है, योग है, त्याग है, वन है, संन्यास है, दूसरी तरफ दुनिया है, लोगों का लाभ है, मदद है, पाप का पर्दाफाश करना है, दुख उठा कर भागना नहीं, यहीं रह कर सचाई के लिए लड़ना है। मैं अकेली उस सबको नहीं भेल सकूंगी। दो पांवों पर बोझ संभाल, एक पर न चल। गिर जायेगा। मुझे चाहते हुए तू दुनिया को न भूल, उससे धिन न कर, मुझे अंधा होकर प्यार न कर। मैं तो तेरी साथिन हूँ। जो तेरे लिये अच्छा है, सो मेरे लिये अच्छा है। तू कमा के गेहूँ चना जौ ला। मैं पीस के रोटी करूँगी। तू खा और मुझे खिला। अपना काम तू कर, अपना काम मैं करूँगी। मैं ताना डालूँगी, तू बाना डाल। तू मेरे पास आये तो आँख खोल कर आ। ऐसा न कर कि तुझे यह लगे कि तू सुपने में मिल रहा है! तू दूर चला जाता है, तब भी मुझे पास ही लगता है। आँखों का अन्तर भले ही पड़ जाये, पर प्राण तेरे ही पास रहते हैं।'

लोई ने कबीर का हाथ पकड़ लिया और कहा : 'मैं समझती नहीं, गलत तो नहीं कहती ?'

कबीर चौंक उठा। बोला : 'जो तू कहती है वह मुझे अच्छा लगता है। 'यह मैं नहीं चाहती। तू अच्छा लगता है, तो सुनता है, पहले से मन में बना लेता है, तो अच्छा लगता है, और अगर पहले से मन में बना लेगा कि अच्छा नहीं लगेगा, तो उस दिन तुझे मेरी बात भी अच्छी न लगेगी। मैं यह नहीं चाहती। मैं कहूँ तो सुन। फिर तू कह, मैं सुनूँ। जो तुझे ठीक लगे उसे तू बता मुझे ठीक न लगे वह मैं कहूँ। हम तुम अलग अलग नहीं कबीर, हम तुम संगी साथी हैं।'

और कबीर ने वह एक नवीन मार्ग देखा। वह एक समन्वय था, जो किसी प्रकार की भी दासता को अस्वीकृत करता था। वह उत्तरदायित्व को समझ करके भेलना था, जहाँ व्यक्ति की पूर्णता थी, किंतु अपने को विनष्ट करने वाली अंध पराजय नहीं थी। उसने कहा 'लोई !'

'क्या है ?'

'सब रसायन में किया
 प्रेम समान न कोय ।
 रति एक तन में संचरे
 सब तन कंचन होय ।
 जोई मिलै सो प्रीति में
 और मिलै सब कोय
 मन सो मनसा ना मिलै
 देह मिलै का होय ।

लोई के नेत्रों में आनन्द के दीपक जग उठे मानों पुतलियों के अंधकार में जीवन्त आलोक गुलग उठा, जैसे वृक्षानी लहरों के बीच किमी दीपस्तंभ पर से किरणें हवा को काटती अंधकार को फाड़े दे रही थीं । कबीर ने फिर कहा—

जल में बसे कमोदिनी
 चंदा बसे अकारा
 जो है जाको भावता
 सो ताही के पास ।
 ननों की करि कोठरी
 पुतली पँलग विछाय
 पलकों की चिक डारि कै
 पिय को लिया रिभाय ।

लोई ने आनन्द से नेत्र मूंद लिये । कबीर ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—

अग्नि आँच सहना सुगम
 सुगम खड़ग की धार
 नेह निभावन एक रन
 महा कठिन व्योहार ।
 जा घट प्रेम न संचरे

सो घट जान मसान,
जैसे खाल लुहार की
साँस लेत बिनु प्रान ।

लोई ने उसके वद्ध पर सिर धर दिया और विभोर हो गई ।

कबीर देखता रहा ।

उसने कहा : लोई ।

वह चौंक उठी । उसने आँखे खोलीं । उन नयनों में कितना जीवन था ।

कबीर को लगा जैसे अमृत का समुद्र लहरा रहा था । मन ने कहा । कौन कहता है स्त्री माया है, पाप है । वह जननी है, वह आद्या सृष्टि है । वही पूर्ण है । पुरुष उसका अंश है । स्वयं अनन्त भगवान भी स्त्री हीन नहीं है । इसे छोड़कर बन जाने में क्या लाभ है ! वे जो भटक रहे हैं उन्हें यह केवल कामिनी ही दिखाई देती है । वह पुरुष की विकृत वासना ही है जो इसे देख कर केवल कामिनी देखता है ! वह इसकी आत्मा के पूर्णत्व को नहीं देखता ।

लोई ने कहा : 'मैं यहाँ नहीं रहूँगी ।'

'कहाँ जायेगी लोई ?' कबीर ने चौंककर पूछा ।

'तू मुझे ले चले । देख तेरी माँ भी बूढ़ी हो गई है ।'

कबीर क्षण भर सोचता रहा ।

'क्या सोचता है ! धन की चिंता करता है ? जैसे तू रहता है, मैं रहूँगी । यहाँ क्या फरक है । धन तो आता जाता है कबीर । मन का विश्वास मुझे दे दे, फिर मुझे कुछ भी नहीं चाहिए ।

कबीर ने कहा : नहीं लोई ।

पो फाटी पगरा भया
जागे जीवा जून
सब काहू को देत है
चोंच समाता चून ।
मन के हारे हार है
मन के जीते जीत

कह कबीर पिऊ पाइए

मनही की परतीत

लोई आनन्द से उठ खड़ी हुई श्रीर फिर इससे पहले कि कबीर उठे उसने पास रखे मटके को उठा कर कबीर पर उंडेल दिया । कबीर भीग गया । कबीर ने उसको पकड़ लिया श्रीर कहा : अब तुझ पर कौन सा रंग डालूं !

लोई ने मुस्करा कर कहा : मैं तो उसी दिन से रंग गई हूँ जिस दिन तुम्हें देखा था.....

मरजीवे* को तो देखो.....

जिंदगी पुकारती है : कमाल रुक कर देख !!

और मैं बहुत दिन बाद मुड़ कर देख रहा हूँ ।

लेकिन जो तब भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा.....

वह नये मानव का विद्रोह था !

स्वतन्त्रता***बुद्धि की पूर्ण स्वाधीनता केलिये मनुष्य ने पुकार उठाई थी***

पिता कहा करते थे—

काल करै सो आज कर

आज करै सो अब्ब

पल में परलै होइगी

वहुरि करैगा कब्ब ।

कर्त्तव्य के लिये वे देरी नहीं सह सकते थे ।

श्रीर सचमुच मैं कुछ न कर सका । प्रलय हो ही गई ।

कबीर को चेलों ने हुचा ही दिया, क्योंकि मट बना, धन आया, श्रीर मोह ने सत्य को टंक लिया ।

पर यदि मैं कुछ नहीं कर सकता तो क्या यह भी न कष्ट कि मैंग बाप यह ही नहीं था, जिसे शून्य शून्य कहकर सब बलानते हैं । ये उर्गे मशान् कह देते हैं पर उसको उन बातों को नहीं कहते, जो उसका अपना नियम था । मैंने तो उपसंहार से आरम्भ की भलक देखी, पर मैं यह फिर कष्टूंगा, कदीकि मेरा बाप दीन जुलाहा था । उसने पहले ब्राह्मण को पूज्य गमका था । फिर उसका विकास हुआ । यह जोगियों से प्रभावित हुआ । फिर जब यह जागा तो उसके भीतर की शक्ति जागी । उसने इन सब बंधनों को तोड़ दिया ।

वह संस्कृति का पुनर्जागरण था, दीन जनता का पहला स्पष्ट मार्ग निर्माता था । पर उसे लोगों ने टबा दिया है ।

क्या वह दब सकेगा ।

यह तो मेहनत को कमाई पर पतन था। आदमी था "दाजिन, जाग मों, हुल मों, घनदीन, पन्नु आगात्रिन"

मैं बताऊँगा कि वह पग पग वा बड़ा श्रीर फिर दीपक में ही दीपक बतलाता चला गया ।

फिर ब्राह्मण, बोगी, दूक, सबने श्रीर के पद लक्ष्य दिखे । श्रीर कबीर के चेलों ने उनकी नकल की, कबीर के विरोध को उन्मत्त उसके धार्मिक जीवन के शून्यनाट में टंक दिया, जब यह बोगियों के समान में था

मैं तो वह दिव्यद्वंशा को सींग आंघ भूल नहीं है ।

निता दूनगें की श्रीर विरोध की शक्ति में दुर्भी हो जाते थे । उन्होंने एक दिन व्योमल होकर कहा था—

आफनी कह मेरी सुने
सुनि गिरी दूरी श्रीर
मट दस्तद जब बसा
गता सिता न कीय ।

देस देस हम वागिया
ग्राम ग्राम की खोरि
ऐसा जियरा ना मिला
जो ले फटकि पछोरि ।
भक्ति भक्ति सब कोई कहै
भक्ति न आई काज
जहँ को किया भरोसवा
तहँते आई गाज
सब काहू का लीजिये
साँचा शब्द निहार ॥
पच्छपात ना कीजिये
कहै कबीर विचार ।

मैंने कहा था : दादा ! फिर धर्म क्या परम्परा से पिता से पुत्र को नहीं मिलेगा ?

कबीर ने कहा था : नहीं बेटा ! धर्म कोई रूढ़ि तो नहीं । मनुष्य का कल्याण ही धर्म है । अपना ही विश्वास अपना ही बंधन बन जाये यह क्या ठीक है ?

‘नहीं है दादा !’ मैंने कहा था । ‘पर संसार में सब तो सोचते नहीं ।’

‘इसीलिये कुछ लोग सबको मूर्ख बनाते हैं ।’

वे सोचने लगे थे । फिर कहा था : वे मन मिलाने के लिए बात नहीं कहते । वे संदेह बढ़ाने की बहस करते हैं ताकि उनके चेलों पर उनका प्रभाव बढ़ता रहे ।

‘तुम्हें दुख होता है ?’

‘होता है बेटा ।’

‘क्यों ?’

‘क्योंकि मैं उन्हें सोचने के लिए कहता हूँ । और वे लीक पर ही गाड़ी चलाये जाते हैं ।’

‘इससे उन्हें फायदा क्या है ?’

‘वे कीचड़ में फँसना नहीं चाहते । सोचते हैं जो राह है वही काफ़ी है ।’

‘पर वे जिन रास्तों पर चलते हैं, वे कीचड़ में ही तो धने हैं !’ मैंने

पूछा था ।

पिता प्रसन्न हुए थे ।

‘कहा था : कमाल ! तू समझता है ?’

‘मैं नहीं जानता ।’ मैंने कहा था । ‘परन्तु तूम जो कहते हो, वह सब तुम्हें कहाँ मिला ! साधुओं के पास बैठने से दादा ! तुम तो पढ़ना लिखना भी नहीं जानते !’

‘पिता ने मुस्करा कर गाया था :

मैं मरजीवा समुद्र का
 डुबकी मारी एक
 सूंठी लाया ज्ञान की
 जामें वस्तु अनेक ।
 डुबकी मारी समुद्र में
 निकसा जाय अकाम
 गगन मंडल में घर किया
 हीरा पाया दास ।
 जा मरने से जग डरै
 मेरे मन आनन्द
 कब मरिहीं कब पाइहीं
 पूरन परमानन्द ।

उन्होंने कहा था : जो मौत से नहीं डरते, वे जान लेते हैं ।

‘क्या दादा !’

‘यह संसार धोखे की आड़ में चलता है ।’

‘तो वे कहते क्यों नहीं !’

‘अपने स्वायों से डरते हैं ।’

‘क्या हैं वे !’

‘धन के बंधन ।’

‘उन्हें तोड़ना कठिन ही क्या है ?’

‘बेटा ! पेट नहीं बोलने देता । वह ही मौत से डराता है । मौत क्या है ? बुद्धि को बेच देना ।’

मैंने देखा था वे चिंतित लग रहे थे ।

मैंने कहा था : दादा !

‘क्या है ?’ वे चौंक उठे थे ।

‘मौत में आनन्द है ?’

‘उसमें है जो निर्भयता का फल है वही माया को काटना है ! आदमी की माया उसका संसार है ।’

‘तो यह संसार छोड़ना चाहिये ?’

‘नहीं, इस दुनिया को कौन छोड़ता है ? मैंने छोड़ी है क्या ?’

‘नहीं ।’

‘बेटा ! माया का अर्थ है मनुष्य के वे बंधन जो उसे मनुष्य होने से रोकते हैं ।’

‘मैं नहीं समझा दादा ।’

‘बेटा !’ पिता ने साँस खींचकर कहा था : ‘भगवान क्या है बता सकता है ?’

‘वही तो सब है ।’ मैंने उत्तर दिया था ।

‘पिता ने कहा था :

भजूँ तो को है भजन को

तजूँ तो को है आन

भजन तजन के मध्य में

सो कवीर मन मान ।

मैंने अनबूझ बनकर देखा था । मुझे विश्वास नहीं हुआ था । पूछा था : तो क्या भजन व्यर्थ है ? फिर तुम नाम महिमा क्यों लेते हो ?

पिता मुस्कराते थे । कहा था : ‘भगवान नहीं छोड़ा जा सकता है न ? तो फिर भजन करने के लिए है ही कौन ? किसको छोड़कर किसका भजन करूँ बेटा । खाली नाम का क्या लेना और त्याग का मोह भी किस लिये ? भजन करने के लिए कोई दिखता है तुम्हें ?’

'नहीं दादा ।'

'तो जो दिन रात भजन करते हैं वे क्या पाते हैं !'

'लेकिन दादा ! तुम तो नाम की दुहाई देते हो !'

'श्रव भी देता हूँ ।'

'क्यों ?'

'यह पूछ किनको देता हूँ ?'

मैंने अविश्वस्त दृष्टि से देखा था ?

पिता ने कहा था : 'उन्हें नाम याद दिलाता हूँ जो नाम भी भूल जाते हैं।'

'पर किसका नाम पिता ?'

'उस दृष्टि की शक्ति का, जो इस सब संसार और ब्रह्माण्ड में फैली हुई है। उसमें सब शक्ति है, सत्य है, क्या छोड़ा जा सकता है, क्या है जो भजन के ही योग्य है। बेटा ! माया में तो मनुष्य ने स्वयं अपने को बाँध लिया है।

'तो क्या माया भगवान में नहीं है ?'

'है बेटा। यह सत्य भी उसी का है, यह माया इस सत्य को ढँकती है।

अतः यह भी उसी की है। पर यह माया जड़ नहीं है कि मनुष्य इससे निकल न सके। यह जान धूम कर उसमें फँसता है।'

'तो माया क्या है। दादा ?'

'धन, रूप के बंधन। भूँठ, दगा, फरेब, अहंकार। वितण्डा, धर्म का ढोंग, यह सब माया है।'

मैंने सोचा था, पिता पुरानी राह को फूँक रहे थे, मुझे एक नयी आग सी भमकनी हुई दिखाई दे रही थी। वह माया अब अध्यात्मिक छलना न रह कर वास्तविक बंधन लगने लगी थी।

माँ रोटी ले आई थी। चार मुझे दी थीं, तीन पिता को। दो स्वयं लेकर लोटा पानी का भर कर पास ले आई थी। और हम छाने बैठ गये थे।

पिता ने कहा था : लोई ! तू ही पालती है। तू ही खिलाती है। साँई एक दया कर। रोटी दिये जा।

रूखा सूखा खाय के

ठण्डा पानी पीव

देखि विरानी चूपड़ी
मत ललचावै जीव ।
कविरा साँई मुज्भ को
रूखी रोटी देय
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ
रूखी छीनि न लेय ।
आधी अरु रूखी भली
सारी सों संताप
जो चाहैगा चूपड़ी
बहुत करगा पाप ।

लोई ने कहा : गरीब को रूखी ही भली । झूठ तो नहीं बोलनी पड़ती इसके लिये ?

‘सच कहती है’, पिता ने कहा—‘लोई ! चुपड़ी रोटी ईमान और मेहनत से नहीं मिलती । उसके लिये पाप करना पड़ता है । दूसरों को लूटना पड़ता है । गला काटना पड़ता है । राजा किसान को लूटता है, महंत शिष्यों को बहकाता है, जोगी भीख के लिए कर्तब दिखाता डराता धमकाता है ।’

मैंने देखा वे दोनों प्रसन्न थे । गले में रोटी अटक गई थी ।

माँ ने कहा : पानी तो पी ।

‘माँ, गले में अटकी है ।’ मैंने कहा था ।

माँ की आँखों में स्नेह छलक आया था । कह उठी थी : ‘बेटा ! जुलाहे का बेटा है ! जुलाहा बन । सुना नहीं दादा ने क्या कहा ?’

‘क्यों नहीं सुना माँ ।’

‘पर तुझे अच्छा नहीं लगा न ?’

मैं जबाब नहीं दे सका ।

पिता ने कहा : बेटा ।

मैंने आँखें उठाईं ।

‘रोटी अटकती है ?’

‘हाँ दादा ।’

है करलो । मैंने सोचा था सच कहता है यह आदमी । पर क्या इसीलिए बुराई करना ठीक है । उससे दूसरों का गला नहीं कटेगा क्या ?

माँ ने कहा : अरे कौन नहीं मरता । जोगी क्या अमर ही हो जाते हैं । ऐसा होता तो दुनियाँ खाली न हो जाती । और सदा जिये जाने की हविस ही क्यों हो ? पैदा होने वाले मरते रहें यही सबसे ठीक है ।

पिता ने कहा : मैंने कहा था भगवान हमारे दिन रात के कामों में ही है बाहर नहीं है ।

‘यह तुमने मुखबिरी क्यों कहा ?’ माँ ने पूछा ।

‘लोई ! गरीब के खिलाफ़ लोग धनी को बताते हैं और चन्द टुकड़ों के लिये गरीब का गला कटवाते हैं । इस तरह के लोग कभी भगवान को पा सकते हैं ?’

माँ ने कहा था : कौन कहता है ? छिः ! वे तो घोर पापी हैं ।

‘मैंने कहा था लोई’, दादा ने कहा था । ‘आज साधुओं में बहस चल रही थी ।’

‘मुझे वही सुनाओ ।’ माँ ने कहा था ।

पिता ने सोचते हुए दुहराया था :

ब्रह्महि ते जग उपजा
कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्यागि विनु
जगत न त्यागन जोग ।
ब्रह्म जगत का बीज है
जो नहिं ताको त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है
कहहु कौन वैराग ।
नेत नेत जेहि वेद कहि
जहाँ न मन ठहराय ।
मन बानी की गम नहीं

ब्रह्म कहा किन ताय ।
 बिन देखे वह देस की
 यात कहै सो कूर
 आपे खारी खात ही
 बेचत फिरत कपूर ।

'फिर ?' माँ ने पूछा ।

'बे बिगड़ गये ।'

माँ हंसी । कहा 'घक्का लगेगा तो कौन नहीं हिलेगा कंत । तुमने तो वेद को ही टकर मार दी ।'

'किसी ने देखा है वह ब्रह्म ?' पिता ने कहा । 'किसी ने नहीं । फिर सब कुछ उसी के लिये करने से तो काम नहीं चलेगा लोई । यह संसार तो उसी का रूप है । इसका अच्छे रूप में चलना ही तो ब्रह्म की उपासना है ।'

माँ प्रसन्न दिखाई दी । बोली : 'बे अब तो तुम्हें मोही नहीं कहते ?'

उसका ध्यंग्य पिता समझ गये । कहा : तू भूली नहीं है । बलख तक गया था लोई यह कबीर । क्या क्या कष्ट नहीं उठाये । एक बार भीख न मिली, तो साधियों साधुओं ने दौंग रचा । मैं तो शर्म से गढ़ गढ़ गया । मैंने सोचा । यह माया नहीं तो क्या है ? स्त्री को तो माया कहें और आप दूसरे को घोखा देकर पेट पालें । यह क्या पाप नहीं था !'

खाना खतम हो चुका था । माँ लोटा उठाकर भीतर कोठे में चली गई थी । मैं श्रौंघने लगा था ।

पिता गा रहे थे :

मोको कहाँ हूँदता बंदे

मैं तो तेरे पास में,

ना मैं बकरी, ना मैं भेड़ी
 ना मैं छुरी गंडास में
 नहीं खाल में नहीं पोंछ में
 ना हड्डी ना मांस में
 ना मैं देवल ना मैं मसजिद
 ना कावे केलास में
 ना तो कौनों क्रिया करम में
 नहीं जोग वैराग में
 खोजी होय तो तुरतै मिलि हौं
 पल भर की तालास में
 मैं तो रहीं सहर के बाहर
 मेरे पुरी मवास में
 कहैं कबीर सुनो भई साधो
 सब साँसों की साँस में ।

‘लोई !’ पिता ने पुकारा था ।

‘क्या है कंत !’ लोई आ गई थी ।

‘वह तो हर जगह है लोई !’

‘तुम मुझसे बार बार यह क्यों कहते हो ?’

‘मैं सचाई को दुहराता हूँ ।’

‘लेकिन मुझे लाज आती है ।’

‘क्यों !’

‘कहीं लोग सुनेंगे तो कहेंगे कि लोई का कबीर पर बंधन है । तभी कबीर
 पराग्य छोड़ बैठा है ।’

कबीर ने कहा : ‘वह होता तो और बात थी लोई । पर यह ही जीवन
 का बड़ा दर्शन है । पूर्ण है । वह तो पुरुष का दर्शन था, जो अपने को अधूरा
 मान कर चलता था ।’

‘सच कहते हो ?’

‘तुम्हें विश्वास नहीं होता !’

‘मुझे विश्वास नहीं क्यों होगा कंत ! मैं जानती हूँ तुम कभी झूठ से एमझौता नहीं करते । मैं मानती हूँ कि नारी माया है, पर कब ! उनके लिए जो भोग को ही जीवन का सब कुछ मान लेते हैं । वे तो असल में कभी प्रेम ही पवित्रता को नहीं जान पाते । मैं अपढ़ हूँ, तुम्हारे साथ रह कर क्या-क्या नहीं सीख गई हूँ कंत ! तुमने ही तो कहा था—

दूर वे दूर वे दूर वे दूर मति
 दूर की बात तोहि बहुत भावे
 अहै हज्जूर हाजीर साहबघनी
 दूसरा कौन कहु काहि भावे ।
 छोड़ दे कल्पना दूर का धावना
 राज तजि खाक मुख काहि लावे
 पेड़ के गहे ते डार पल्लव मिले
 डार के गहे नहि पेड़ पावे ।
 डार औ पेड़ औ फूल फल प्रगट है
 मिले जब गुरु, इतनी लखावैं ।
 संपति सुख साहबी छोड़ जोगी भए
 शून्य की आस बनखंड जावै ।
 कहहि कव्चीर बनखंड में क्या मिल
 दिलहि को खोज दीदार पावे ।

तुमने नहीं कहा था !’

‘मिने हो कहा था लोई । सारा देश एक पागलपन में डूब गया है । श्री और संतान भी अपना महत्व रखते हैं । जो अपने ही माध्यम से सब को सोचते हैं, मैं उन्हें ही माया में फँसा हुआ देखकर कहता हूँ कि साथ कोई कुछ नहीं ले जाता ! सब यहाँ रह जाता है । पर जो आदमी अपना पेट पालता है उसे क्या बीबी बच्चों का पेट पालना नहीं चाहिए ! मैं रामक गया हूँ । साधू कहते थे कि इस संसार के घंघे में आदमी पेट का घंघा ही याद रखता है और परमात्मा को भूल जाता है । पेट के घंघे के स्वार्थ में वह अंधा

होकर पाप भी करता है, अपने अपराधों में अपने आप जकड़ जाता है। मैं मानता हूँ यह सत्य है, क्योंकि आदमी का पेट मजबूर है, और आदमी पेट के लिए मजबूर है। पर आदमी की मेहनत मजबूर नहीं है। लोभ और तृष्णा को रोक कर आदमी ईमान की रोटी खुद कमा कर खाये। भगवान का भजन करने वाला प्राणी, अपने पेट के लिए दूसरों के सामने हाथ क्यों फैलाए। देखती हो। भीड़ की भीड़, यह साधुता के नाम पर जो भिखमंगों की जमात चलती है, वह क्या दूसरों की मेहनत से कमाये माल को हराम में नहीं खाती ! उस अन्न का फल गृहस्थ भोगते हैं, और साधु उसे खाकर भगवान को पाते हैं। यह कैसे हो सकता है। लोई ? शून्य की आशा में वनखण्ड जाने वाले भटके हुए लोग हैं करनी का फल तो मन में है। उसके लिये तो कहीं जाना भी नहीं पड़ता लोई। सोचती हो मैं क्या कह रहा हूँ। यही लोगों को नहीं भाता, पर क्या करूँ—

अवधू भूले को घर लावै
 सो जन हमको भावै
 घर में जोग भोग घर ही में
 घर तजि वन नहि जावै ।
 अनप्राप्त+ वस्तु को कहा तजे
 प्राप्त को तजै सो त्यागी है ।
 सुअसील तुरंग कहा फेरे
 अफतर फेरे सो वागी है ।
 जगभव का गावना क्या गावै
 अनुभव गावै सो रागी है ।
 वन गेह की वासना नास करे
 कळ्वीर सोई वैरागी है ।

वन को मुक्ति और गेह को बंधन क्यों समझता है यह मनुष्य है ?

पिता की बात सुनकर मुझे लगा पिता कुछ ऐसा कह रहे थे जो अर्थ था। तो क्या धर्म के नाम पर मुफ्त खाने वाले अधर्म कर रहे थे ?

वही विचार आज तक याद आता है जो एक स्फूर्ति सी बग उठती है। धर्म को पिता घरती पर ला रहे थे। वह कह रहे थे कि धर्म के नाम पर अनाचार मत फैलाओ। ससार में प्रेम और ईमानदारी से रहना ही धर्म है।

मैंने तब नहीं समझा था कि इस बात में कितनी गहराई थी। माँ अवश्य प्रसन्नता के परे दिखाई देती थी। जैसे वह जो मुनने की आशा भी रख सकती थी। वह सब उसने सुन लिया था। उसने जीवन का नया सत्य मुना था। वह सब जो मन में छटकता था, पर स्पष्ट नहीं होता था, पिता ने उसे तर्क के साथ स्वरूप दिया था और वह बात एक सशक्त चेतना बन कर हमारे भ्रौंपड़े में गूँजने लगी थी—“वह गूँज आज तक उसी रूप में कानों में बाकी रह गई, क्योंकि जब वह हटती है, तभी मुझे सुना सुना सा लगने लगता है, लगता है जैसे छीना भपटी हो रही है। पिता ने आघार को पकड़ा था, ढोंग के कारण को पकड़ा था। ढोंग भ्रदा पैदा करवाने के लिए था, भ्रदा चमत्कारों पर पलती थी। चमत्कार ही ढोंग था, जो रोटी सुरक्षित करने के लिए किया जाता था”

पिता कहते थे—

सिंहों के लंहड़े नहीं
हंसों की नहि पाँत
लालों की नहि बोरियाँ
साधु न चलें जमात।
सब बन तो चंदन नहीं
सूरा का दल नहि
सब समुद्र मोती नहीं
याँ साधु जग मांहि
साध कहावन कठिन है
लंबा पेड़ खजूर
चड़ै तो चाखै प्रेम रस
गिरै तो चकनाचूर
वृक्ष कबहुँ नहि फल भवै

नदी न संचें नीर
परमारथ के कारने
साधुन धरा सरीर ।

‘तो क्या’ मैंने पूछा था—‘साधु परमारथ करने को हैं दादा ?’

‘हाँ बेटा !’

‘सो क्यों दादा । तो वे भजन कब करेंगे ?’

‘बेटा !’ पिता ने कहा—‘वे भजन करें, अपना कल्याण कर लें तो जगत को लाभ ही क्या ? और वह भजन भी क्या जो नाम और गीत में ही रहे । दूसरों के दुखों को भी देखने से रोक दे ।’

‘तो क्या दादा ! वे दूसरों के दुख में रम कर, फिर माया में लिप्त नहीं हो जायेंगे ?’

‘माया तो अपना बंधन है बेटा । दूसरे की परेशानी दूर करने को हाथ बँटाना तो माया नहीं है, माया को काटना है ।’

पिता ने सोच कर कहा : मिलने को क्या बात बेटा । वे ही तो सब जगह हैं ।

‘फिर उन्हें ढूँढते क्यों हैं ?’

‘जो स्वार्थ में बंध जाते हैं, वे नहीं देख पाते, वे ही मूर्खता के कारण उसे ढूँढते हैं, वना वह तो सब जगह है । वह ही एग्यस्वरूप आलोक है । वह ईश्वर ही सब में है, उस ईश्वर को न पाने का कारण है कि अहंकार और मद में मनुष्य अपने संसार के व्यवहार को बिगाड़ लेता है, दूसरों को सताता है, दबाता है, उससे भगवान दूर हो जाता है, कहो कि भगवान से अपने आपको वे दूर कर लेते हैं, क्योंकि प्रेम और समता को मिटा कर अहं और भेद को उठाते हैं और वे दोनों तभी उठते हैं जब वे सच्चाई और प्रेम को, स्वतन्त्रता को दबा चुकते हैं ।’

पिता ने कहा था : बेटा ! यह संसार किधर जा रहा है । साधु के नाम पर टगई हो रही है । चारों तरफ धर छोड़ कर हाथ पर हाथ धर कर खाने का यह तरीका लोगों ने खूब निकाल लिया है ।

और पिता ने अपने आप विचोभ भरे स्वर से गाया था । मानों अपने

आपको मुना रहे थे...

साधु भया तो क्या भया
माला पहिरी चार ।
बाहर भेस बनाइया
भीतर भरी भंगार ।
माला तिलक लगाइके ।
भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाये के
चले दुनी के साथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के
हूआ घोटमघोट ।
मन को क्यों नहि मूँड़िये
जामें भरिया खोट ।
केसन कहा विगारिया
जो मूँड़ी सौ वार ।
मन को क्यों नहि मूँड़िये
जामें विपे विकार ।
बाँबी कुटे वावरे
साँप न मारा जाय ।
भूरख बाँबी ना डसे
सर्प सबन को खाय ।

माँ हँसी थी ।

'क्यों हंसती है लोहे !' पिता ने पूछा था ।

'हंसूंगी नहीं । तुम बाहर न सुनाना इसे ।'

'क्यों ?'

‘वे चिढ़ेंगे ।’

‘चिढ़ लेने दे । मैं क्या सचाई कहने से डर जाऊंगा ।

‘डरने को नहीं कहती । पर देखते हो । कमाल को भी देखा है ।’

‘देख लोई,’ कबीर ने कहा : ‘पाप के अनेक नाम हैं । अपनी निबलता को छिपाने के लिए आदमी बहाने ढूँढ़ता है । बहू बच्चे अगर उसकी आड़ बनते हैं तो वे ही माया के बंधन हैं । क्या यह जरूरी है कि मैं तुम दोनों के कारण डर डर कर जिंदगी काटूँ ?’

माँ ने कहा था : ‘डरने को तो कमाल भी नहीं डरता कंत ! क्यों रे मैं ठीक कहती हूँ ?’

मैंने रटा हुआ पद बड़े ऊँचे सुर से गाया था :

गुरु मिला न सिष मिला
लालन खेला दाँव ।

दोऊ बूढ़े धार में
चढ़ि पाथर की नाँव ।

जानंता बूझा नहीं
बूझि किया नहिँ गौन ।

अंधे को अंधा मिला
राह बतावै कौन ।

बंधे को बंधा मिलै
छूटै कौन उपाय ।

कर सेवा निरबंध की
पल में लेत छुड़ाय ।

वात बनाई जग ठगा
मन परमोधा नाहिँ ।

कह कबीर मन लै गया
लख चौरासी माँहि ।

पिता ने सुना तो आनंद हुआ था ।

बोले : तुम्हें किसने सिखाया है ।

नये भावों के सिंह श्रंखलारमयी डिभागी गुलाबों में भूसे से गरबने लगते और बाहर श्रान्तर रुदियों के शिकार करने को व्याकुल हो उठते। एक बार रिता ने बोगियों के श्रस्ताड़े में बाकर टट्टा मचा दिया। वे गा उठे—

ऐसा जोग न देखा भाई ।
 भूला फिर लिये गफिलाई ।
 महादेव का पंथ चलावै ।
 ऐसी बड़ो महंत कहावै ।
 हाट बाट में लावै नारी ।
 कच्चे सिद्धन माया प्यारी ।
 कव दत्ते ÷ मावानी X तोरी ।
 कव सुकदेव तोपची जोरी ।
 कव नारद बंदूक चलाया ।
 व्याम देव कव बंध बजाया ।
 करहि लड़ाई मति के मंदा ।
 ई है श्रतिथि कि तरबस वैदा ।
 भए विरक्त लोभ मन ठाना ।
 सोना पहिरि लजावै बाना ।
 धोरा घोरी कीन्ह बटोरा ।
 गाव पाय जस चने करोरा ।

बोगी लड़ाई के लिये प्रजा को उकसा रहे थे। उन्होंने चमत्कार दिखाने की चेष्टा की। रिता ने उसे भी काट दिया। बोल उठे—

श्रासन उड़ए कौन बड़ाई ।
 जैसे काग चील्ह मँडराई ।
 जैसी भिस्त तैसी है नारी ।
 राज पाट सब गिनै उजारी ।
 जैसे नरक तम चंदन माना ।

‘मुझसे पूछते हो ? तुम नहीं जानते ?’

‘मैं समझा हूँ लोई । गुरु गद्दीवाला नहीं है, गुरु तो मेहनत करने वाला है ।

गुरु घोवी सिप कापड़ा
साबुन सिरजन हार ।

सुरत सिला पर धोइये
निकसै जोति अपार ।

माँ ने मस्ती से कहा : ‘कंत । मुझे नयी हिम्मत मिली ।’

‘तूने ही एक दिन सहारा दिया था लोई ।’

माँ ने कहा : ‘नहीं, कवीर खुद जागा था ।’

पिता ने कहा : कच्ची मिट्टी का रूप जग उठा है—

गुरु कुम्हार सिप कुंभ है
गढ़ गढ़ काढ़ खोट ।

अन्तर हाथ सहार दै
वाहर बाहँ चोट ।

‘मैंने नयी परिभाषाएँ सुनीं । वह बातें जब घर के बाहर मैंने सुनाईं तो जोगी बिगड़ उठे ।

गुरु !!

गुरु !! और ऐसे संसारी !!

वे उसे रूपक के तौर पर भी नहीं मानते ये ।

क्यों ?

क्योंकि सहज यानी और नाथ, सूफी और शाक्त सब गुरु को एक आडम्बर बना बैठे थे । ब्राह्मणों तक पर इसका प्रभाव था ।

पिता की ललकारों पथों पर गूँजने लगीं । आबाल वृद्ध सुनते । उनमें विद्रोह सा जाग उठता । पिता के शब्द पुराने विश्वासों को भकभोर उठते ।

नये भावों के सिद्ध ग्रंथकारमयी दिमागी गुच्छाओं में भूले से गरजने लगते और बाहर आकर रुढ़ियों के शिकार करने को व्याकुल हो उठते। एक बार पिता ने जोगियों के शलाहे में जाकर टट्टा मचा दिया। वे गा उठे—

ऐसा जोग न देखा भाई ।
 भूला फिर लिये गफिलाई ।
 महादेव का पंथ चलावै ।
 ऐसो बड़ो महंत कहावै ।
 हाट वाट में लावै नारी ।
 कच्चे सिद्धन माया प्यारी ।
 कव दत्त † मावासी X तोरी ।
 कव सुकदेव तोपची जोरी ।
 कव नारद बंदूक चलाया ।
 व्यास देव कव बंध बजाया ।
 करहि लड़ाई मति के मंदा ।
 ई है अतिथि कि तरकस बैदा ।
 भए विरक्त लोभ मन ठाना ।
 सोना पहिरि लजावै वाना ।
 घोरा घोरी कौन्ह बटोरा ।
 गांव पाय जस चले करोरा ।

जोगी लड़ाई के लिये प्रजा को उकसा रहे थे। उन्होंने चमत्कार दिखाने की चेष्टा की। पिता ने उसे भी काट दिया। बोल उठे—

घ्रासन उड़ए कौन बड़ाई ।
 जैसे काग चील्ह मँड़राई ।
 जैसी भिस्त तैसी है नारी ।
 राज पाट सय गिनै उजारी ।
 जैसे नरक तस चंदन माना

जस वाउर तस रहै सयाना ।
लपसी लौंग गनै एक सारा ।
खाड़ै परिहरि फांकै छारा ।

नारी के लिये बहिश्त का प्रयोग उन नारी विरोधियों में धधक उठा । उनके मार्ग को पिता ने विनाश का मार्ग कहा । उनको पिता ने बुद्धिहीन कह दिया ।

काशी में बवंडर उठने के से आसार दिखाई देने लगे ।

भंग घोटते, सुलफ़ा पीते जोगी और मुफ़तख़ोरे साधू अपने चिमटे बजाने लगे । वे क्रुद्ध थे । पर कवीर फ़कड़ था, अक्खड़ था—निडर था, निर्द्वन्द्व* भीड़ें उसे देखकर विह्वल हो जाती थीं ।

सारी काशी उसकी बात सुनकर भूमती थी, परन्तु मुल्ला और पण्डित नहीं सुनते । उनके मुख पर एक घृणा थी । यह जुलाहा ! नीच ! धर्म और मजहब के विरुद्ध बोलता है । पिता ने भरी सड़क पर भीड़ में गाया :

ऐसो भरम विगुरपनॐ भारी !
वेद किताब दीन औ दोजख
को पुरुषा को नारी ।
माटी के घर साज बनाया
नादे विंदु समानाX ।
घन विनसे+ क्या नाम धरहुगे
अहमक खोज भुलाना ।
एकौ हाड़ त्वचा मलमूत्रा
रुधिर गुदा एक मुद्रा ।
एक विंदुःते सृष्टि रच्यो है
को ब्राह्मण को शुद्रा ।

* असमञ्जस ।

X शब्द ब्रह्म और विन्दु ।

+ वीर्य विनष्ट होने पर ।

ः वीर्य ।

रजगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर
सतोगुणी हरि सोई ।
कहै कबीर राम रमि रहिमा
हिंदू तुरक न कोई ।

पय पर लोगों में हलचल मच गई ।

परिद्वत चिल्लाया : पापी है ।

मुल्ला चिल्लाया : काफ़िर ही नहीं, दोबख का रास्ता है ।

श्रीर जुलाहों में श्रावेश का भएडा फहराने लगा ।

कबीर ने श्रादिनाद किया था ।

उसने गर्वन किया था कि इस देश में कोई हिंदू और कोई मुसलमान नहीं । उसने पुराने अहंकार और नए अहंकार, दोनों को समान रूप से खंडित किया था ।

उसने कहा था : मनुष्य मनुष्य है ।

सब मनुष्य समान हैं ।

उसने कहा था : यह देश अपना है । हम विदेशियों के रंग में रंगे नगे नहीं, क्योंकि वे इस्लाम के नाम पर भटके हुए हैं ।

उसने कहा था : यह देश कुलीन उच्च वर्णों की संस्कृति का ही नहीं है, जिसे ही सब कुछ मान लिया जाय, जिसके अन्याय और पाप को देशभक्ति और धर्म संस्कृति के नाम पर बचाया जाय । उसने तो एक नए मनुष्य के लिए नयी जमीन तैयार करने की कोशिश की थी । जहाँ विदेशी का अहंकार और अत्याचार न हो, जहाँ उच्चवर्णों का असाध्य और दंभ न हो । जहाँ मनुष्य के रूप में नीच माने जाने वाले उठें ।

उसने संस्कृति का नया रूप माँगा था । वह जागरण का स्वर था, जो वर्णों और संप्रदायों में से मनुष्य को मुक्त करना चाहता था । तभी उसने गाया था :—

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मएड सब

राम का नाम सुनि भरम मानी

निरगुन निरंकार के पार परब्रह्म है

तासु को नाम रंकार जानी ।
विष्णु पूजा करै ध्यान गंकर धरें
मनहिं सुविरंचि बहु विविध वानी ।
कहैं कबीर कोउ पार पावै नहीं
राम को नाम है अकह कहानी ।

उसने कहा था कि ब्रह्म तो अकह है । उसे कोई नहीं जानता ।

अपनी संस्कृति के नाम पर जो उच्चवर्ण हम नीच वर्णों पर अत्याचार करते थे, वह सचमुच उच्चवर्णों की ही तो स्वार्थ साधिका थी । उस संस्कृति के उसी रूप की रक्षा से हमें क्या लाभ था !

और वह कबीर ही था जो उच्चवर्णों का विरोध करते समय यह नहीं भूला कि इस्लाम भी मुक्ति का रास्ता न था । वह वर्ण भेद नहीं मानता था, पर गरीब को वहाँ भी सुख न था । वह विदेशियों के सामने पराजित नहीं हुआ । उसने बताया कि इन दो के अतिरिक्त एक सत्य और था ।

वह सत्य था जनता का !

मनुष्य का !

अपराजित मनुष्य का ।

जो पिस रहा था, पर कबीर की फौलादी आवाज ने उच्चवर्णों की रुढ़ियों की दीवारों और विदेशियों की उठी हुई तलवारों को विभ्रान्त कर दिया ।

काशी के सिकलीगर, मनिहार, और निम्न जाति के लोग उठने लगे ।

कबीर की पुकार जनता की रोटी के साथ बढ़ने लगी और फिर गजब हुआ । वे नीच जातियाँ जो इस्लाम के अधिकारों की चकमक में मुसलमान हो गई थीं, उन्होंने अपनी पुरानी सत्ता को पहँचाना, उन्होंने स्वीकार किया वे बिक गई थीं, और फिर वे जातियाँ कबीर के झण्डे के नीचे आने लगीं । कबीर घर घर में नयी चेतना फैलाता रहा ।

काशी उस समय भारत का हृदय थी । वहाँ सब धर्म अपने अपने मठ लिए बैठे थे ।

केवल कबीर के पास कुछ नहीं था, केवल शब्द था, वह उसी शब्द को अपना ब्रह्म कहा करता था...

उनके उन्हास बढ़ने लगे :

वेद विनाश मुझ नहि मंथन
नाहि यमन परगाही ।
बाग निवाज नहीं तब यमना
गमो नहीं गीदा* ही ।
घादि घन मन मध्य न होने
घातन पवन न पानी !
नग घोरानी जीव जन्तु नहि
गागी मन्द न बानी ।
कहहि कबीर मुनो हो प्रयत्न
घागे करु विचारा ।
पूज ब्रह्म कहीं ते प्रगटे
शिरम+ किन उगारा ।
प्रविगति की गति क्या बहों
जाके गाव न टाऊ ।
मुग्धों बिहीना पेगना*
या कहि लीजे नाउ ।

उमने पुकारा था—

वेद स्मृति शास्त्रन जल नहीं है ।

नमात्र भी अन्त नहीं है ;

कबीर ने पूछा : इनके पदले क्या था ?

उमने पूछा : इनके आगे क्या है ।

'तुम नहीं जानते', उमने कहा—'कोई नहीं जानता । फिर जब कोई नहीं जानता, तो उसका नाम क्यों धरते हो ? उसका नाम देखर क्यों लक्षते हो ? यह तो बुद्धारी सीमाओं में आने वाला नहीं है ! तुमने किस संकल से उसका नाम धर दिया !

था था, दादा ! तुम ब्रह्म को नहीं मानते ?
ने कहा था : 'बेटा ! मैं मानता हूँ पर सबको चलते देखता हूँ इसी
हूँ । पर वह निस्संदेह वह नहीं है जो यह लोग कहते हैं ।'

कि इनकी परमात्मा की कल्पनाएँ इनके अपने स्वार्थों के साथ लगी
का परमात्मा एक रूढ़ि है, यह लीक पीटते हैं, जानता है क्यों ?
यों भला ?

क्योंकि इनका परमात्मा ही इनके पेट भरने का साधन है ।
'तुम भी तो कहते हो वही परमात्मा सबका पेट भरता है ?'
पिता ने कहा था : 'ठीक है बेटा भरता है । पर क्या वह एक का भर
दूसरे का पेट काटता है ?'

में अवाक् रह गया था । पिता ने काशी के भरे बाजार में घोषणा की थी-
संतौ आनै जाय सो माया !
है प्रतिपाल काल नहिं वाके
ना कहूँ गया न आया ।

क्या मकसूद मच्छ कछ होना
शंखासुर न सँघारा ।

अहै दयालु द्रोह नहिं वाके
कहहु कौन को मारा ।

वे कर्ता न बराह कहावैं
घरणि धरैं नहिं भारा ।

ई सब काम साहेव के नाहीं
भूठ गहै संसारा ।

खंभ फारि जो वाहिर होई
ताहि पतिज सब कोई ।

हिरनाकुस नख उदर विदारे
सो नहिं कर्ता होई ।

वावन रूप न बलि की जाँचैं

जो जांचि सो माया
 बिना विवेक सखन जग जँहड़ेऊ
 माया जग भरमाया ।
 परशुराम छत्री नहि मारा
 ई छत्र माया कीन्हा
 सत्र गुण भक्ति भेद नहि जाने
 जीव अमिय्या दीन्हा ।
 गिरजनहार न व्याही सीता
 जलं परान नहि बंधा
 वे रघुनाथ एक कै मुमिरं
 जो मुमिरं सो अंधा ।
 गोप स्वान गोकुल नहि प्राण
 करने+ कंत न मारा
 मेहरवान है मवका माहव
 नहि जीता नहि हारा ।
 वे कर्ता नहि वीष * कहावें
 नही अमुर को मारा
 ज्ञानहीन कर्ता मव भरमे
 माया जग गंहारा ।

* जकड़ दिया+ कर्ता * बुद्ध : कबीर के समय में बुद्ध को अमुरों का नाशक कहते थे । नानक ने भी ऐसा ही कहा था ।

तब तक बौद्ध समाप्त हो चुके थे । बुद्ध को भारत में ब्राह्मणों ने पूज्य मान लिया था । बुद्ध ने ईश्वर और वेद का विरोध किया था । इस बात को यों देखा गया—भगवान ने बुद्ध को कर्मकारण की दृष्टि की अति रोकने को मेजा था । अमुर वेद को नष्ट करना चाहते थे । बुद्ध ने कहा : वेद दे ही नहीं ईश्वर दे ही नहीं । इस प्रकार बुद्ध ने अमुरों को धम में डाल दिया और उनके संहार कर दिया ।

'नया रास्ता ।'

मैंने देखा !' उस समय पिता के मुल पर मनुष्य के मविष्य के विषय में चिंतन करते हुए अन्वष्ट विरवास था ।

'वह रास्ता कौन सा देवता मानता है दादा ।'

'देवता ।' दादा ने कहा—'मैं कैसे बताऊँ कमाल ! मैं नहीं जानता । वह सब करता है पर उसे कोई बता कैसे सकता है, वह निश्चय उन रुदियों और सीमाओं में बंधा नहीं है, जैसा ये लोग कहते हैं ।' वे गाने लगे थे—

तेहि साहब के लागो साथा
 दूइ दुख भेटि के होहु सनाथा ।
 दशरथ कुल अवतरि नहि आया
 नहि लंका के राय सताया ।
 नहि देवकि के गर्भहि आया
 नहीं यशोदा गोद खिलाया ।
 पृथ्वी रमन दमन नहि करिया
 बैठि पताल नही बलि छलिया ।
 नहि बलिराम साँ भाँड़ी राती
 नहि हरिनाकुस बघल पछारी
 रूप बराह धरणि नहि धरिया
 छत्रों मारि निहृत्रि न करिया ।
 नहि गोवर्धन कर पर धरिया
 नही ग्वाल सँग बन बन फिरिया ।
 गंडक शालग्राम न शीला
 मत्स्य कच्छ ह्वै नहि जलहीला ।
 द्वारावती शरीर न छाँड़ा
 लौ जगनाथ पिंड नहि गाडा ।
 कहहि कबोर पुकारि कै
 या पंचे मत्र नुलि ।

जैहि राखे अनुमान करि
थूल नहीं असथूल ।

मैं समझा ।

पिता ने कहा : अगर इस्लाम से लड़ना है तो अवतार अच्छे हैं, ब्राह्मण धर्म है । पर क्या इस्लाम और ब्राह्मण धर्म के अलावा आदमी के लिये कोई रास्ता नहीं है जिसमें धृष्टा, भेद, ऊँच नीच न हो । लेकिन प्रजा नहीं समझती । वह इन्हीं के बंधनों में है । दुनिया से रोज की तुराई का दूर होना ही माया का हट कर भगवान का प्रकट होना है । लोग हिंदू संस्कृति की बात करते हैं, पर संस्कृति क्या वरुणों में बँधी है । हम दीन क्या कुछ नहीं है ?

पिता चिंता में डूब गये थे ।

मैंने पूछा था : 'दादा नया धर्म कैसा होगा ?—

'बेटा वह रूढ़ि नहीं होगा ।' पिता ने कहा और वे मग्न होकर गा उठे—

साधु साधु सब एक हैं
ज्यों पोस्ते का खेत
कोई विवेकी लाल है
नहीं सेत का सेत
जाति न पूछो साध की
पूछ लीजिये ज्ञान
मोल करो तलवार का
पड़ा रहन दो म्यान
साधू भूखा भाव का
धन का भूखा नाहिं
धन का भूखा जो फिरें
सो तो साधू नाहिं ।
विना वसीले चाकरी
विना बुद्धि की देह
विना ज्ञान का जोगना
फिरें लंगाये खेह ।

छोर मीने देखा रिठा हाथ की बन्दार पर कितना खोर देने थे । अब मीने देखा है कि दक्षिण के पिगावत भी कापिब न बड़ा खोर देने हैं । रिठा को सुत्तामोगी में निद थी ।

मुझे इस एक बात में सब धर्मों के धरपहास की रङ्ग बरती हुई शिखारं दी ।

रिठा पहले मगुग मानो थे ।

छिर ये रक्षक की छोर मुके ।

रक्षक ने रक्षक पर पटुनाया ।

रक्षक ने साधू बनाया ।

साधू बन कर भीन मगिनो रही तो पूजा हो गई ।

पेट के लिये रक्षक ने पुकारा ।

रक्षक ने कहा—मेहनत कर ।

मेहनत ने ईमान की छोर भेजा ।

ईमान ने उम्हे टोंग ताकिए बना दिया ।

संगार में पढ़ने बिद्योगी की जिम्मेदारियाँ ही माया मानो ब्राली थी ।

रिठा ने उन जिम्मेदारियों में दूगरे को दुग देने छोर गले बाटने वाली बात को माया कहा ।

मगुग ये मानो नही थे, क्योंकि मगुग को प्राद में मनुष्य रुदिवी को मानना था । ब्राह्मण टीग देखाते थे ।

निधुंग की ये नही माना थे, क्योंकि उसे किसी प्रकार कोई समझ नही आता था ।

दिया ने उम्हे बड़ी पूजा थी । तभी कहा था—

बकरों पानी गान है

ताकी काशी गान

जो बकरों को गान है

ताकी कौन हवाल ।

दिन को रोजा रहत है

रात हनत है गाय

यह तो हून यह बंदगी

कहु क्यों खुसी खुदाय ।
खुसी खाना है खीचरी
माहि परा टुक नौन
माँस पराया खाय कर
गरा कटावै कौन ।

मुसलमान शासक थे । जब उन्होंने सुना तो उन्हें क्रोध हो आया ।

मुल्ला रहमान अपने मुरीदों के साथ आये ।

‘कहाँ है वह जुलाहा ?’ वे पुकार उठे ।

हम तब चबूतरे पर बैठे थे । पिता ने खड़े होकर कहा: आयें । विराजें ।

हम पवित्र हुए ।

मुल्ला जी शांत हुए ।

कहा: सुना है तुम मुसलमानों के खिलाफ लोगों को भड़का रहे हो ?

‘नहीं मुल्ला साहेब ।’ पिता ने कहा—‘मैं किसी से जलता नहीं ।’

मुल्ला जी ने अपने मुरीदों की ओर देखा । जैसे अब कहो ।

एक मुरीद ने कहा : ‘नहीं साहेब ! यह जुलाहा कहता था कि रोजा

खाने वाला गाय खाता है । यह क्या हिन्दू वाली बात नहीं है ?’

‘तुमने कहा था ?’ मुल्ला ने पूछा ।

पिता मुस्कराये । कहा : ‘तो किसी बेकुल्लर जानवर की जान की हिफाजत

करना आदमी को हिन्दू बना देना है ?’

‘लेकिन हिन्दू गाय को नहीं खाते ।’ मुल्ला जी ने कहा ।

‘न खायें ।’ पिता ने कहा —‘वे दूसरे माँस खाते हैं ।’

‘तौ तुम वैशनों हो ?’ मुल्ला जी ने कहा ।

‘नहीं ।’

‘क्या हो ।’

पिता चुप रहे ।

मुल्ला जी ने फिर पूछा । पिता ने कहा—

ऐसा लो तत ऐसा लो,

मैं केहि विधि कहाँ गँभीरालो ।

बाहर कहा तो सतगुरु लार्जे
भीतर कहीं तो झूठा लो ।
बाहर भीतर सकल निरंतर
गुरु परतापे दीठा लो ।

मुल्ला जी समझे नहीं । कहा : तो तू अल्लाह को भी नहीं मानता ।
बोप है ?

'नहीं ।' पिता ने कहा ।

'किर ?'

'मैं नहीं कह सकता', पिता कह उठे—

एक काल सकल संसारा
एक नाम है जगत पियारा ।

तिया पुस्त बन्धु कयो न जाई
सर्व रूप जग रहा समाई ।

'मुझे स्त्री पुरुष सबमें वही दिखाई देता है, पर वह स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, वह निराकार नहीं है, साकार में सीमित नहीं है ।'

मुल्ला जी विचम्ब हो उठे । बोले—'तू झुठ नहीं मानता ?'

'मैं सब मानता हूँ', पिता ने कहा ।

'तो उसे समझा नहीं ~~सकता~~ ।'

'आदमी की अकल ही कितनी मुल्ला सादेब । आदमी की पदुन ही कितनी । वह तो उतना ही जानता है जिसकी कल्पना कर सकता है—

अबधू छोड़हु मन विस्तारा ।
तो पद गहो जाहिते सद्गति
पारब्रह्म से न्यारा ।
नही महादेव नहीं महम्मद
हरि हजरत सब नांही
आदम ब्रह्म नाहि सब होते
नही धूप नाहि छोही ।

असीकिसहस्र पैगम्बर नाहीं
 सहस्र अठासी मूनी+
 चंद्र सूर्य तारागन नाहीं
 मच्छ कच्छ नहिं हूनीं ।

‘क्या बकता है?’ मुल्ला जी गरजे ।

पिता ने कहा : मैं सच कहता हूँ मुल्ला साहब ! आप ही बतायें—

पेटहूँ काहु न वेद पढ़ाया
 सुनति कराय तुरक नहिं आया,
 नारी गोचित गर्भ प्रसूती
 स्वांग धरै बहुतें करतूती ।
 तहिया हम तुम एकें लोहू
 एकें प्राण वियायल मोहूँ ।

मुल्ला जी क्रोध से उठ खड़े हुए । बोले : सुना तुम सबने । काजी जी के पास चलो । यह अपने को न हिन्दू कहता है, न बौध, पर मुसलमानों को झुराई करता है ।

‘मजाल तो देखिये आका !’ एक मुरीद ने दाद दी । ‘यह सब काफिर हैं। मुल्ला जी ने पलट कर कहा : ‘जुलाहे ! तू आग में हाथ डाल रहा है।’

‘कैसे मुल्ला साहब ।’ पिता शांत थे ।

‘बता ।’ मुल्ला चिल्लाया । तू कौन मजहब मानता है ?’

पिता उठे । उन्नत ललाट उन्होंने हाथ उठा कर पुकारा—

ना मैं धरमी, नाहिं अधरमी
 ना मैं जती, न कामी हो ।
 ना मैं कहता, ना मैं सुनता
 ना मैं सेवक, स्वामी हो ।
 ना मैं वंधा, ना मैं मुक्ता

ना निरबंधी सरबंगी हो ।
 ना काहू से न्यारा हूआ
 ना काहू को संगी हो ।
 ना हम नरक लोक को जाते
 ना हम सरग सिधारे हो ।
 सब ही कर्म हमारा कीया
 हम कर्मन ते न्यारे हो ।

कोई नहीं समझा ।

एक जोगी जो मुसलमान हो गया था बोला—सुन्न को मानने वाला लगता है ।

पिता ने कहा : नहीं । वह सुन्न अगर मुझे बोधता है तो मैं बंधने को तैयार नहीं हूँ । मेरे लिये सब बराबर हैं । मैं किसी भेद भाव को नहीं मानता—

आपुहि करता मे करतारा ।
 बहु विधि वासन गढ़े कुम्हारा
 विधना सबै कीन यक ठाऊँ
 अनिक जतन कै बनक बनाऊँ
 जठर अग्नि महँ दिय परजाली
 तौम आप भये प्रतिपाली ॥
 साँची बात कहौ मैं अपनी ।
 भया दिवाना और कि सपनी
 गुप्त प्रकट है एकै मुद्रा ।
 काको कहिये, ब्रह्मन मुद्रा ॥
 भूठ गरब भूलै मति कोई
 हिंदू तुरूक भूठ कुल दोई ।

‘भूठ !’ मुझा गरजा ।

‘हिंदू भी ?’ कोई चिल्लाया ।

‘नास्तिक है ।’

‘अरे नीच जुलाहा है ।’

पिता ने कहा : तुम भूले हुए हो । अगर तुम सचमुच भगवान के बनाये अलग २ हो, अगर हिंदू और मुसलमान जन्म से अलग हों तो मैं झूठा हूँ । बोलो—

जो तोहि कर्ता वही विचारा
जन्मत तीन दरद अनुसार
जम्मत शूद्र भए पुनि शूद्रा
कृत्रिम जनेऊ घालि जगदुंद्रा ।
जो ब्राह्मन वाम्हनि जाए
और राह तुम काहे न आये ?
जो तू तुरक तुरकिनी जाया +
पेटे काहे न सुनति कराया ?
कारी पीरी दूहौ + गाई
ताकर + दूध देहु विलगाई ।

यह ऐसी भयानक बात थी जिसका इन स्पष्ट शब्दों में सुनने को वहाँ किसी में भी ताव नहीं थी । सीधी चोट थी । लेकिन वह इन्सान की पुकार थी, वह जो न उच्चवर्णों से दबी थी, न इस्लाम के खड्ग से ।

पिता ने जोर से हॉक लगाई—

दुइ जगदीश कहाँ ते
कहु कौनै भरमाया
अल्ला राम करिम केशव हरि
हजरत नाम धराया ।
गहना एक कनक ते गहना

× पैदा किया हुआ

× दुहो

*गाय

×उनका

अलग कर दो !

ताने भाव न दूबा
 कहन मुनन को दुई कर पाते
 एक नेवाब एक दूबा।
 वही महादेव वही मुहम्मद
 ब्रह्मा प्रानन बरिद
 कोई हिंदू कोई तुलूक बहुरै
 एक जनी पर गीरे।
 वेद किताब पडै वे कुटुबा
 वे मौजाना वे गुरे
 विगत विगत के नाम प्रगरी
 एक भाटी के गीरे।
 कह कबीर ते दोनों दुने
 सनहै सिन्दू न रन,
 वे मजिना, वे गाय बडावे
 वारेन जनन बरन।

निता ने कहा या—एक जनी न गन है।

जनीन !

जनीन !!!

मेरे कानों में गूँबने लगी।

सनता किमकी !!

घरती थी !

स्त्री !

स्त्रीकि कोई भेद नहीं मगन।

यह बाद छानती लखों के गनहै है।

निता को मुसलमान विदेशी जन बन ले चुकित नहीं है। न सही नै
 रुदिश्री में बडदा देनने है। इन्तन के कानकी की दुखन की कर्मिणन

उँव नीव का व्यवहार के गूँब लखने है।

● बरग सनहै : बड निद है

और पिता ने जो मुल्ला साहब से कहा था उससे मिलता जुलता ही
 होने फिसलते पंडितों से भी कहा था :

पंडित देखो हृदय विचारी
 कौन पुरूक को नारी ।
 सहज समाना घट घट वौलै
 वाको चरित अनूपा
 वाको नाम कहा कहि लीजै
 ना श्रीहि वरन न रूपा ।
 वेद पुरान कुरान कितेवा
 नाना भाति बखानी
 हिंदू तरुक जैन श्री, जोगी
 एकल काहु न जानी ।
 छ दरशन* में जो परवाना+
 तासु नाम मनमाना
 कह कवीर हम ही हैं क...
 ई सब खलक० सयाना ।

उन्होंने स्पष्ट कहा था कि कोई भी भगवान को नहीं जानता । सब
 भगवान की आड़ में पाप कमाते हैं । उन्होंने व्यंग्य से कहा भी था कि यह सब
 जहान सयाना है, केवल कबीर ही पागल हो गया है । वे यह न कहते तो
 कहते भी क्या ? कोई विश्वास ही नहीं करता था ।

*षट् दर्शन

+प्रमाण

x पागल

० संसार

वह रात की बेला थी । पिता ने गाया था :

जल बिच मीन पियासी ।

मोहि देखि देखि आगे हाँसी ॥

श्रीर सचमुच वे हँस उठे थे ।

‘क्या हुआ ?’ मैंने पूछा था ।

‘बेटा मुझे रोना आता है ।’

‘पर तुम हँसते हो ?’

‘श्रीर मैं करूँ भी क्या ?’

‘क्यों ?’

‘देखता है यह संसार कितना भटका हुआ है । सारे जहान में भगवान है । सृष्टि ही एक आश्चर्य है । उस आश्चर्य की सीमाएँ बाँधकर यह लड़ता है श्रीर अपनी सीमित बुद्धि को ही सब कुछ कहने लगता है ।

दूसरे दिन उधर अज्ञान की पुकार सुनाई दी, इधर पिता ने सड़क पर तान छोड़ी—

ना जाने तेरा साहेब कैसा ।

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे

क्या साहेब तेरा बहिरा है

चिउँटी के पग नेवर बाजें

साहेब साहेब सुनता है ।

पण्डित होय के आसन मारें

लंबी माला जपता है ।

अन्तर तेरे कपट कतरनी

सो भी साहय लखता है ।

ऊँचा नीचा महल बनाया

गहरी नीब जमाता है ।

चलने का मनसूबा नाहीं

रहने को मन करता है ।

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी

गाड़ि जमीं में घरता है ।
जेहि लहना है सो लै जैहै
पापी बहि बहि मरता है ।
सतवंती को गजी मिलै नहि
वेश्या पहिरे खासा है ।
जेहि घर साधू भीख न पावै
भड़ुआ खात बतासा है ।

लोग इकट्ठे होने लगे थे ।

पंडित मुल्ला, जोगी, जैनी, सब ही असन्तुष्ट थे । पर दलित जनता प्रसन्न थी ।

कबीर ने कहा था : तुम धरम के नाम पर वेश्या को नचाते हो और वह स्त्री जो सती साध्वी है उसे पेट भरने को भी नहीं मिलता । एक और स्त्री से खिलवाड़ करके तुम स्त्री के गौरव को घटा रहे हो । जो जीवन को पवित्रता से बिताते हैं उन्हें सहायता नहीं देते, भीख तक नहीं देते, भड़ुओं को बतासे खिलाते हो । धन जोड़ते हो, वही तो माया है ।

परन्तु उच्च वर्गों ने नहीं सुना ।

वे सब अलग अलग गिरोह बंदी करके पिता की हत्या की योजना करने लगे ।

मैं पिता को घर ले आया ।

‘लोई’, पिता ने कहा—‘कमाल घबराता है ।’

माँ ने मुस्करा कर कहा—‘मेरा बेटा डरना क्या जाने कंत । वह पीछे नहीं रहेगा ।’

दूसरे दिन तो वे सोचते रहे, पर तीसरे दिन दुपहर ढले वे बाजार में गाने लगे—

अरे इन दौउन राह न पाई ।
हिंदू अपनी करै बड़ाई
गागर छुवन न देई ।
वेश्या के पायन तर सोवै

यह देतो हिंदुभाई ।
 मुसलमान के पीर श्रीनिया
 मुरगी मुरगा साई ।
 साला केरी बेटी ब्याहें
 घरहि में करे सगाई ।
 बाहर से इक मुर्दा लाए
 धोय घाय चढ़वाई ।
 सब सतियाँ मिलि जँवन बेठी
 घर भर करे बड़ाई ।
 हिंदुन की हिंदुभाई देगी
 तुरकान की तुरकाई ।
 कहैं कबीर मुनो भाई साधो
 कोन राह हँ जाई ।

झुलादे ठट्ठा करके हिंदुओं और मुसलमानों को चिढ़ाने लगे ।
 एक पंडित आगे आया । उसने कहा : कबीर ! मुझे बचाव दे ।
 पिता ने मुझपर देला ।

'मैं पूछता हूँ तू मुसलमानों का गुप्त प्रचार कर रहा है ! तभी तू झूठ
 मिताना चाहता है !'

पिता ने कहा : नहीं पाएउत जी ! मैं उनकी तारीफ नहीं करता । मुझे
 तो दोनों ही में खोट दिखाई देता है ।

'खोट दीगता है तो तू अपना मार्ग बना ।'

'मार्ग एक नहीं हो सकता बाबा । मार्ग की लकीर न खींचो, न
 उसे पीटो ।'

'तो मरजाद क्या रहेगी !'

'आदमियत ।'

'बद क्या है !'

'किसी को दुख न देना ।'

'पर वह तो कहने की बात है कबीर, करने में कभी न आई है न आयेगी'
पिता ने आँखें उठाकर दूर देखते हुए कहा-वह दिन भी आयेगा बाबा ।
वह दिन भी आयेगा ।

'आयेगा तब आयेगा, अभी तो धरम रख ।'

कुछ मुसलमान इस चर्चा से खुश थे ।

एक ने कहा : कबीर तू मुसलमान होजा ।

'होऊँगा,' पिता ने कहा—'पर पहले मुझे यह समझाओ—

दर की बात कही करवैसा
बादसाह है कौने भैसा ।
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा
कौन सुरति को करौँ सलामा ।
मैं तोहि पूछों मुसलमाना
लाल जरद का ताना वाना ।
काजी काज करो तुम कैसा
घर घर लवै करावौँ वैसा ।
बकरी मुरगी किन फुरमाया+
किसके हुकुम तुम छुरी चलाया ।
दरद न जाने ~~कौन~~ कहावै
वैताळ पढ़ि पढ़ि जग संभु भावै ।
कह कबीर एक सय्यद कहावै
आप सरीखा जग कबुलावै ।

हिंदू चिल्लाये : जो हो कबीर अपना ही है ।

कबीर ने चिल्ला कर कहा : नहीं, मैं किसी का नहीं हूँ । मैं किसी का नहीं हूँ ।

वे चिल्लाये—तू कौन है ?

+ बनाये ।

छन्द ।

'मैं आदमी हूँ ।'

'तू भगवान मानता है ?'

'मानता हूँ ।'

'वह क्या है ?'

'मैं नहीं जानता, न तुम जानते हो । तुममें से कोई नहीं जानता, सब झूठ कहते हो ।'

पिता का स्वर दृढ़ था । उन्होंने कहा: बता सकते हो, उसे बता सकते हो ? उस स्वर को सुनकर कोई नहीं बोला ।

पिता ने फिर कहा : वह अग्रिम है और इसलिये हमारी सीमित बुद्धि से परे है । उसके नाम पर तुम लड़ते हो । तुम दोनों ही सचाई से बहुत दूर हो । तुम पागल हो । तुम सचाई को सह नहीं सकते । तुम पागल हो गये हो । तुमने अपनी बुद्धि को बाँध लिया है ।

श्रीर पिता ने मुनाथा—

सैंतो देखल जग बोराना
साँच कहो तो मारन धावै
भूठे जग पतियाना ।
नेमी देखे घरमी देखे
प्रात करहि असनाना ।
आ ~~.....~~ पपाएहि पूजें
उनमें कछू न ज्ञाना ।
बहुतक देखे पीर श्रीलिया
पढ़ें किताब कुराना ।
कै मुरीद तदवीर बतावै
उनमे उहै गियाना ।
आसन मारि डिभ-घरि बैठे
मन में बहुत गुमाना ।

'पर वह तो कहने की बात है कबीर, करने में कभी न थारै है न थारैगी
पिता ने आँखें उठाकर दूर देखते हुए कहा- वह दिन भी आयेगा भाषा
वह दिन भी आयेगा ।

'आयेगा तब आयेगा, अभी तो धरम रख ।'

कुछ मुसलमान इस चर्चा से खुश थे ।

एक ने कहा : कबीर तू मुसलमान होजा ।

'होऊँगा,' पिता ने कहा—'पर पहले मुझे यह समझाओ—

दर की बात कही करवैसा
वादसाह है कौने भैसा ।
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा
कौन सुरति को करौं सलामा ।
मैं तोहि पूछ्योँ मुसलमाना
लाल जरद का ताना वाना ।
काजी काज करो तुम कैसा
घर घर लवे करावौ वीसा ।
वकरी मुरगी किन फुरमाया+
किसके हुकुम तुम छुरी चलाया ।
दरद न जाने ~~कहि~~ कवावे
वैताळ पढ़ि पढ़ि जग सभु भावै ।
कह कबीर एक सय्यद कहावौ
आप सरीखा जग कबुलावौ ।

हिंदू चिल्लाये : जो हो कबीर अपना ही है ।

कबीर ने चिल्ला कर कहा : नहीं, मैं किसी का नहीं हूँ । मैं किसी का
नहीं हूँ ।

वे चिल्लाये—तू कौन है ?

+ बनाये ।

* छन्द ।

'मैं आदमी हूँ।'

'तू भगवान मानता है ?'

'मानता हूँ।'

'वह क्या है ?'

'मैं नहीं जानता, न तुम जानते हो। तुममें से कोई नहीं जानता, सब झूठ कहते हो।'

पिता का स्वर दृढ़ था। उन्होंने कहा: बता सकते हो, उसे बता सकने हो ?

उस स्वर को सुनकर कोई नहीं बोला।

पिता ने फिर कहा : वह अगम है और इसलिये हमारी सीमित बुद्धि से परे है। उसके नाम पर तुम लड़ते हो। तुम दोनों ही सचाई से बहुत दूर हो। तुम पागल हो। तुम सचाई को सह नहीं सकते। तुम पागल हो गये हो। तुमने अपनी बुद्धि को बंध लिया है।

और पिता ने मुनाया—

सैंतो देखउ जग बोराना

साँच कहो तो मारन धावै

भूठे जग पतियाना।

नेमी देखे घरमी देखे

प्रात करहि असनाना।

आदि पपाणहि पूजे

उनमें कछु न ज्ञाना।

बहुतक देखे पीर औलिखा

पढ़ें किताब कुराना।

कैं मुरीद तदवीर बतावै

उनमें उहै गियाना।

आसन मारि डिभ-धरि छीठे

मन में बहुत गुमाना।

पीत पाथर पूजन लागे
 तीरथ गरव भुलाना ।
 माला पहिरे टोपी दोन्हें
 छाप तिलक अनुमाना ।
 साखी सवदै गावत भूले
 आतम खवरि न जाना ।
 कह हिंदू मोहि राम पियारा
 तुरुक कहैं रहिमाना ।
 आपस में दोउ लरि लरि मूए
 मरम न काहू जाना ।

मैंने बढ़ कर कहा : पर दादा । तुम्हें समझाना होगा । वह भगवान है या ?

पिता ने कहा : तो सुन कमाल—

बाबा अगम अगोचर कैसा
 ताते कहि समुझाओं ऐसा ।
 जो दीसै सो तो है नाहीं,
 है सो कहा न जाई ।
 सैना वैना कहि समुझाओं
 गूंगे का गुड़ भाई ।
 दृष्टि न दीसै, मुष्टि न आवै
 विनसे नाहिं नियारा ।
 ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे
 परिडत करौं विचारा ।
 विन देखे परतीति न आवै
 कहे न कोउ पतियाना ।
 समुझा होय सो सब्दे चीन्है
 अचरज होय अयाना ।

वामन नाम बराया ।
 केते वीघ भये निकलंकी
 तिन भी अन्त न पाया ।
 केतिक सिघ साधक संन्यासी
 जिन वन बास वसाया ।
 केते मुनिजन गोरख कहिये
 तिन भी अन्त न पाया ।
 जाकी गति ब्रह्म नहिं पाए
 शिव सनकादिक हारे ।
 ताके गुन नर कैसे पैहो
 कहै कवीर पुकारे ।

और पिता के अनुसार यह वर्ण भेद, जाति भेद, धर्म भेद यह सब अपू-
 णताओं के चिन्ह थे ।

उनका हंस तो सृष्टि के रहस्य पुरुष के पास जा रहा था । बाकी सारी
 कल्पनाएँ नीची थीं* । षट्चक्र के ज्ञानी भोगी जिन्हें पार करते हैं, उनसे भी
 परे वह उड़ता है । X जब हिंदू उसकी उपमा नहीं दे सकते+ आनन्द के द्वारा
 जब सारे फंदे छूट जाते हैं वहीं पिता का सत्यालोक प्रारम्भ होता है, - व
 लोक उनका उत्कर्ष है । फंदे वही हैं जो मनुष्य को कायर, लोभी, अत्याचारी
 कामी बनाते हैं ।

उसका वर्णन ही कौन कर सकता है—

करत वीहार मन भावनी मुक्ति भै
 कर्म और भर्म सब दूर भागै ।
 रंक औ' भूप कोइ परख आनै नहीं
 करत कल्लोल बहुभाँति भागै ।

* तासु के बदन की कौन महिमा कहौ !

X हंस जात षट्चक्र को वेध के सातमुक्काम में नजर फेरा ।

+ रूप की राशि ते रूप उनको बना हिन्दु भी नहीं उपमा निबेर

- भये आनन्द से फन्द सब छोड़िया जहाँ सतलोक मेरा ।

जागे और भीड़ों ने कहा : कबीर ठीक कहता है ।

कौनसा कबीर !

जो हिंदू नहीं है । जो मुसलमान नहीं है । जो जोगी नहीं है ।

जो छुआछूत और ऊँच नीच नहीं मानता, जो हिंसा और दंभ नहीं मानता, जो समाज से दूर रहकर दूसरों की कमाई पर पलना नहीं मानता । जो स्त्री को केवल भोग की वस्तु नहीं मानता, जो संतान के मोह में दूसरों का गला काटना नहीं मानता, जो धन को ही धन के लिये नहीं चाहता । उसे कोई माने या न माने पर इन्हीं पूर्ण विश्वासों ने उस नंगे गरीब को वह आत्म गौरव दिया था कि वह पुकार उठा था—

घरती तो आसन किया

तम्बू कौ असमाना ।

चोला पहिरा खाक का

रह पाकळी समाना ।

और यह सब मनुष्यों को समान मानने की घोषणा आज तक मेरे कानों में गूँज रही है और शायद युगों तक यह इसी तरह अपमानित होकर भी निर्द्वन्द्व गूँजा करेगी, शताब्दियों के निविडांधकार में चिल्लाया करेगी.....

उसकी राहं अजीब थी

मैं जानता हूँ, जो मैं कह रहा हूँ वह आपको कुछ सहज ग्राह्य नहीं है ।
पर यह सत्य है ।

वह तो बिल्कुल अलग था । लोग पूछते हैं कि उसमें ऐसा क्या था जो
उसे तुम इतना महान मानते हो । मैं बताता हूँ मुनो ।

यह तो सत्य ही है कि [redacted] लाहा था । नीच जात था और इसीलिए
वह ऊँचे वर्णों को पहले नहीं मानता था । गुरु रामानन्द से दीक्षा लेकर वह
अपने को पवित्र समझने लगा । परन्तु शीघ्र ही नायजोगियों, सूफियों, वेदा-
न्तियों ने उस पर प्रभाव डाला । वह उलटबाँसी बोलने लगा । परन्तु वह
इतने में ही समाप्त नहीं हो गया । वह नीच जाति का आदमी ऊँची जातों
से रियायतें माँगने में ही खतम नहीं हो गया । वह तो आगे निकल गया ।
और वहाँ वह नयी बात कहता हूँ कि उसने जहाँ हिन्दू, मुसलमान, बांगी,
जैन, शाक्त और बौद्धों को नहीं माना, तब वहाँ उसने मनुष्य के नये जाग-
रण की नोंव डाली । वह यह नहीं कह सका कि ईश्वर क्या था । उसके पास

जो वह सोचता था, उसे समझाने के लिए शब्द नहीं रहे क्योंकि वह जो कहना चाहता था, लोग उसे नहीं सुनते थे। लोग तो अपने धर्म के बंधनों में बँधे थे। लोग तो वही भाषा समझते थे जो उनके धर्मों में थी। और कबीर कह रहा था कि यह सृष्टि अचर्य रहस्य है, पर यह रहस्य सीमाओं में कैसे बाँधा जा सकता है। वह रहस्य तो महान है। वह सब ही ईश्वर है। तब कबीर ने कहा था कि यदि वह रहस्य महान है तो मनुष्य को भी दुनियाँ में अच्छाई करनी चाहिये। कितनी सीधी बात थी ! दूसरों का गला काटना वह बुरा समझता था। और यह बातें उससे पहले किसी ने नहीं कही थी। वह परिवार में रहता था, खाता था तो हाथ पाँवों से काम कर। वह यथार्थ के लिये उतर आया था। और उसने समाज की नीवों को बदलना चाहा था। वह तो गरीब था, नीच था। उसके लिये उच्चवर्ण आदर्श नहीं थे, वह उच्च वर्गीय संस्कृति का मोह नहीं करता था। उसके पास सीधी साधी भाषा थी। वह मानव को सर्व श्रेष्ठ मानता था।

क्योंकि वह मूलतः मानव था। मैं देख रहा हूँ, इतनी जल्दी उसके चेलों ने उसके यथार्थवादी शब्द छोड़ दिये हैं, वे उसके पुराने योग, उलट बाँसी रहस्य, और वेदांती विचारों पर जोर देते हैं। परंतु क्या वे उसे डुबा सकेंगे ? और मुझे याद आ रहा है।

होली की भीड़ थी। लोग भूम रहे थे। कबीर तब युवक था। भीड़ बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे लोग गुँसाई जी के घर की ओर जा रहे थे। वहाँ भाँग का इन्तजाम था। राजा जी के कारिंदे भीड़ के साथ थे। कबीर गुलाल उड़ रहा था।

गुँसाई जी आये। सबने जय जयकार किया।

कबीर ने देखा। सिर हिलाया। और फिर आगे बढ़कर गाया—

फूटी आंखि विवेक की

लखै न संत असंत

जाके सङ्ग दस बीस है

ताकी नाम मह्य

अररर...कबीर...

भीड़ मस्त हो गई !

'श्रीर क्या कबीरे !' एक चिल्लाया ।

पर सिर से गीला गुलाल न गिरा । गुर्मांड के चेलों ने लहू गिराया ।

गिर गया ।

देवीलाल भागा ।

नीमा ने मुना तो बीने पर से छुड़क कर बेहोश हो गई । केवल लोई निर्भय चरण धरती वहाँ जाकर रुक गई । उसने कबीर का खून पोंछा !

'तू कौन है !' एक चले ने पूछा ।

लोई ने उसके लहू की बिंदिया लगा कर सिर मुका लिया ।

'लेजा इसे ।' चले ने कहा 'खबरदार जो फिर इधर आया है । जुलाहा !

कमीना । नीच !'

लोई ने मुना । कहा : श्रीर कहलो पण्डित । पर वह क्या है यह मैं जानती हूँ ।

लोई के बाप ने मुना तो भागा भागा आया । पर जब वह आया उसने देखा लहू से आंचल भिरोने वाली बेटो बेहोश कबीर को ऐसे लिए बैठी थी जैसे पुरानी व्याहता को लगा वह सावित्री थी, उसकी गोद में सत्यधान था ।

यों लोई कबीर एक हो गये ।

कबीर बच गया । पर मों न उठी ।

साभ्र आ गई थी । नीमा खाट पर लेटी थी । लोई सिरहाने गोद में उसका सिर लिये बैठी थी । कबीर बाहर बुन रहा था ।

माँ ने पुकारा : कबीर !

‘आया माँ !’

वह भीतर आया ।

‘क्या है माँ !’

माँ के मुख पर एक गहरी निस्तब्धता थी ।

‘यहाँ आ बेटा !’

कबीर निकट आ गया । माँ उसका मुँह हाथ में लेकर देखती रही ।

शांत अपलक । वे बूढ़ी आँखें प्रभा को लिये एक बार पुलकित हो उठीं और उसने उद्वेगहीन स्वर से पुकारा : बेटा ।

‘माँ !’ लोई रो उठी ।

‘क्यों रोती है लोई ?’ माँ ने कहा । ‘आज मैं जा रही हूँ बेटो ! रोने की क्या बात है ?’

पर वह रोती रही । कबीर अवाक् देखता रहा । माँ का चेहरा कितना शांत था । वे आँखें कितनी गहरी थीं । उन होठों पर कितनी क्षमता और क्षमा थी ।

नीमा ने कहा : बेटा !

‘हाँ माँ !’ कबीर ने फुसफुसाया ।

‘मैं चली जाऊँगी बेटा ! रोना नहीं । मेरा काम पूरा हुआ । अब मुझे दुख नहीं है । लोई आ गई है न ? वह सब सभ्यल लेगी । छोटी तो है, पर लड़की में समझ सुसराल में ही आती है बेटा । रोना न दीजो ।’

कबीर आँखें फाड़ कर देखता रहा ।

माँ ने कहा : आज तक मैंने नहीं कहा बेटा । पर आज कहती हूँ । एक दिन मैं और तेरा बाप नीरू चले जा रहे थे । रास्ते में एक अनाथ, हाल का पैदा हुआ बच्चा पड़ा था । उसे हम उठा लाये और अपना कह कर पाल लिया । बेटा वही तू है...

माँ का वाक्य पूरा नहीं हुआ । वह सदा के लिये चली गई : लोई फूट फूट कर रो उठी, पर कबीर स्तब्ध पत्थर सा बैठा रहा ।

लोई ने उसे झकझोर कर कहा : रो अभागो ! तेरी माँ मरों है ।

कबीर ने उसी मुद्रा में कहा : मेरी माँ ! वह तो मुझे जनम देकर छोड़

गई थी लोई । मैं पाप की संतान हूँ...."

वह कितना कटोर दुःख था जो उसके हृदय को गभे री रहा था ।

लोई ने कहा : बेदरद ! मैं वह नहीं थी, मैं तो यह हूँ...."

'तुम्हें मुझसे नफरत नहीं लोई ?' कबीर ने जैसे ही पूछा । 'मैं तो पाप की संतान हूँ....'

लोई हँसी । उस समय लाश पर रोते रोते यह अनायास ही बोली । उसने कहा : पाप ! कैसा पाप !! मुझे तो तू पहले का था ही लगता है ।

'लोई....!' कह कर कबीर तब रोया था श्रीर जगनं नीमा के पापी का आँसुओं से भिगो दिया था । कितनी महान थी यह स्त्री जिसे एक आर्षी चित्त अनाय को अपना बनाकर पाला था, उतने एकका का जिया था...."

लोई ने आँखें उठा कर देखा था और कहा नहीं था कुछ, केवल फिर चरखा संभालने लग गई थी।

कबीर झुँझलाकर चला आया था।

साधुओं की भीड़ में गुरु रामानन्द अपने भव्य मुख मण्डल पर मुस्कान लिये बैठे थे।

कबीर बढ़ने लगा।

एक चिल्लाया : 'कौन है ?'

'जुलाहा है।' दूसरा बोला।

'अरे देखता नहीं। कहाँ बढ़ा आ रहा है नीच !'


'महाराज बैठे हैं।'

कबीर ठहर गया था। उसने पुकारा था : महाराज ? यह दास शिष्य बनने आया है।

साधु ठठा कर हँस उठे थे।

रामानन्द ने देर तक देखा था। कबीर निर्मल दृष्टि में भक्ति उँड़ेले दे रहा था। रामानन्द का हाथ उठा। सब शाँत होगये। कबीर ने प्रणाम करके पाँव छूने को हाथ बढ़ाया।

'रुक जा।' रामानन्द ने कहा और फिर जैसे वे गंभीर चिंतन में डूब गये। कबीर हाथ बढ़ाये ही रुक गया।

कुछ देर बाद गुरु ने कहा : तेरा नाम 

'प्रभु ! कबीर।'

'कौन जात है ?'

'जुलाहा हूँ।'

'तुझे भगवान ने शूद्र बनाया है जुलाहे। अपना काम कर। वही तेरे लिये धर्म है।

कबीर को काठसा मार गया।

उमने कहा : महाराज ! लोग आपके द्वार से निराश नहीं लौटते । क्या राम मेरा नहीं है ?

गुरु रामानन्द ने मुना तो उठकर चले गये । वे उत्तर नहीं दे सके । श्रीर कबीर वहीं बैठ गया । शाम हो गई । वे मंदिर से बाहर नहीं निकले । आते जाते छाधुओं ने पहले तो खिल्ली उड़ाई फिर उसे धक्का देकर भगा दिया ।

भीर की पहली किरन भी नहीं फूटी । गंगा के घाट पर स्वामी रामानन्द खड़े आकाश की ओर देख रहे थे । उन्होंने धीरे से आकाश की ओर हाथ उठा कर बड़बड़ाया : राम तू किसका है ?

गंगा हरहरा उठी ! मानों पतिततारिणी ने उत्तर दे दिया । वह तो सब की थी । रामानन्द सीढ़ी से उतरने लगे ।

हठात् उनका पाँव अंधेरे में किसी से छू गया ।

'राम राम !' रामानन्द ने कहा—'राम राम !'

श्रीर उनका पाँव पकड़ कर किसी ने दुहराया, राम राम ! राम राम !

'कौन !' रामानन्द ने चर से पूछा ।

'गुरुदेव ! मुझे मुनि का बीजाक्षर मिल गया ।' किसी ने विमोर स्वर से रामानन्द के चरणों पर सिर रख कर कहा ।

'कबीर !' रामानन्द का कण्ठ काँप गया । वे रो उठे और उन्होंने उसे वच से लगा कर कहा : कबीर ! तू जीत गया कबीर । मुझे तूने अहं और अभिमान, अन्याय और पाप के बंधनों से मुक्त कर दिया कबीर ! मैं अन्या हो गया था । सारा ब्रह्माण्ड राम है वत्स । यह भेद मनुष्य के बनाये हुए हैं । उसके लिये सब बराबर हैं । वही राम तू है, वही गंगा है । राम तो सबका है ।

'गुरुदेव !' कबीर विमोर सा पुकार उठा था ।

गंगातीर की शांत बेला में प्रमात का समीरण सिकता पर भूम रहा था । कबीर वहीं खड़ा रहा और जपता रहा : राम राम...राम राम...'

लोई ने आँखें उठा कर देखा था और कहा नहीं था कुछ, केवल फिर चरखा संभालने लग गई थी ।

कबीर भुँभलाकर चला आया था ।

साधुओं की भीड़ में गुरु रामानन्द अपने भव्य मुख मण्डल पर मुस्कान लिये बैठे थे ।

कबीर बढ़ने लगा ।

एक चिल्लाया : 'कौन है ?'

'जुलाहा है ।' दूसरा बोला ।

'अरे देखता नहीं । कहाँ बढ़ा आ रहा है नीच !'


'महाराज बैठे हैं ।'

कबीर ठहर गया था । उसने पुकारा था : महाराज ? यह दास शिष्य बनने आया है ।

साधु ठठा कर हँस उठे थे ।

रामानन्द ने देर तक देखा था । कबीर निर्मल दृष्टि में भक्ति उँड़ले दे रहा था । रामानन्द का हाथ उठा । सब शाँत होगये । कबीर ने प्रणाम करके पाँव छूने को हाथ बढ़ाया ।

'रुक जा ।' रामानन्द ने कहा और फिर जैसे वे गंभीर चिंतन में डूब गये । कबीर हाथ बढ़ाये ही रुक गया ।

कुछ देर बाद गुरु ने कहा : तेरा नाम 

'प्रभु ! कबीर ।'

'कौन जात है ?'

'जुलाहा हूँ ।'

'तुझे भगवान ने शूद्र बनाया है जुलाहे । अपना काम कर । वही तेरे लिये धर्म है ।

कबीर को काटसा मार गया ।

उयने कहा : महाराज ! लोग आपके द्वार से निराश नहीं लौटते । क्या राम मेरा नहीं है ?

गुरु रामानन्द ने मुना तो उठकर चले गये । वे उत्तर नहीं दे सके । श्रीर कबीर वहीं बैठ गया । शाम हो गई । वे मंदिर से बाहर नहीं निकले । आते जाते साधुओं ने पहले तो खिल्ली उड़ाई फिर उसे धक्का देकर भगा दिया ।

भीर की पहली फिरन भी नहीं फूटी । गंगा के घाट पर स्वामी रामानन्द खड़े आकाश की श्रोर देख रहे थे । उन्होंने घोंरे से अकाश की श्रोर हाथ उठा कर बढ़बड़ाया : राम तू किसका है ?

गंगा हरहरा उठी ! मानों पतितवारिणी ने उत्तर दे दिया । यह तो सब की थी । रामानन्द सीढ़ी से उतरने लगे ।

हठात् उनका पाँव अंधेरे में किसी से छू गया ।

'राम राम !' रामानन्द ने कहा—'राम राम !'

श्रीर उनका पाँव पकड़ कर किसी ने दुहराया, राम राम ! राम राम !

'कौन !' रामानन्द ने चरखे से पूछा ।

'गुरुदेव ! मुझे मुक्ति का बीजाक्षर मिल गया ।' किसी ने विभोर स्वर से रामानन्द के चरणों पर सिर रख कर कहा ।

'कबीर !' रामानन्द का कण्ठ काँप गया । वे रो उठे श्रीर उन्होंने उसे वक्ष से लगा कर कहा : कबीर ! तू जीत गया कबीर । मुझे तूने अहं और अभिमान, अन्याय और पाप के बंधनों से मुक्त कर दिया कबीर ! मैं अन्धा हो गया था । सारा ब्रह्माण्ड राम है वत्स । यह भेद मनुष्य के बनाये हुए हैं । उसके लिये सब बराबर हैं । वही राम तू है, वही गंगा है । राम तो सबका है ।

'गुरुदेव !' कबीर विभोर सा पुकार उठा था ।

गंगातीर की शांत बेला में प्रभात का समीरण सिकता पर भूम रहा था । कबीर वहीं खड़ा रहा श्रीर जपता रहा : राम राम...राम राम...

आज उसे लग रहा था वह मुक्त हो गया था.....

रात भर के जागे नैन लाल हो गये थे। लोई बैठी थी। कबीर लौटा तो पागल सा था।

‘लोई!’ वह चिल्ला उठा।

‘क्या हुआ?’ लोई चौंक पड़ी।

‘मुझे गुरु रामानन्द ने शिष्य बनाया लोई! मुझे राम मिल गया।

मैं मक्ति का अधिकारी हो गया।’

लोई मुस्करा दी। धीरे से कहा : मुझे तू वैसा ही लग रहा है कंत जैसा पहले था। क्या ब्राह्मण के मना कर देने से राम तेरा नहीं था? क्या उसके छूकर कह देने से ही तू मुक्त हो गया!

कबीर ने सुना तो देखता ही रह गया। अवाक्, नित्पंद....

लोई ने फिर कहा : यह बच रहा है, इसे बुनले, सुबह को चून भी नहीं है.....क्या आज राम को भूखा ही रखेगा....

कबीर ने सिर झुका लिया।

कमाल के जन्म से पहले की बात है। कबीर के घर साधु आने लगे थे। आकाश में बादल घिर रहे थे। किसी ने द्वार थपथपाया।

‘कौन है?’ कबीर ने पूछा।

लोई ने द्वार खोला। एक बूढ़ा साधु था।

‘पधारो महाराज!’ कबीर ने कहा। साधु भीतर आया।

परन्तु लोई के चेहरे पर उदासी आगई। आज वे दोनों भूखे सो रहे थे किंतु अतिथि भूखा कैसे रहेगा? लोई चुपचाप चली आई। जब लौटी तो

आया था। साधू की सेवा हुई। साधू चला भी गया। पर लोई जहाँ बैठी थी वहीं बैठी रही।

कबीर ने कहा : बचा है कुछ लोई !

'हाँ !'

'तू खाले !'

'नहीं, तुम खालो !'

पर फिर दोनों खाने बैठे। लोई दृष्टात् कबीर के पत्र पर सिर रख कर फूट फूट कर रोने लगी।

'क्या हुआ ?' कबीर ने कहा।

लोई कह नहीं सकी। अन्त में कबीर ने सुन ही लिया।

भोला : फिर ?

लोई ने कहा : वचन दिया था तो क्या हुआ ! पाप निभाना मुझसे नहीं होगा।

कबीर ने कहा : पाप ! उसे पाप समझना ही पाप है लोई ! घर में नाज नहीं था। अपने पेट के लिये नहीं था, हमने भीख नहीं माँगी। पर दूसरा आया। उसका तो पेट भरना अपना धर्म था ! हम भी क्या धनी अमीरों की तरह श्रावणों फेर लेते ? तू नाज माँगने गई। जिसने नाज दिया उसे तेरा रूप अच्छा लगा। उसने तुझे माँगा। तू हाँ कर आई। तो फिर वचन निभा लोई !

'नहीं, नहीं', लोई रो पड़ी।

कबीर ने हँस कर कहा : पगली ! तू समझती है मैं तुझसे क्या धिन करूँगा ? क्या चाहता है वह सेठ। तेरी जवानी से गैहाना चाहता है न ! खेलने दे उसे क्योंकि तूने वचन दिया है। तू पाप के लिए उसके पास नहीं जाती लोई। पाप तो उसमें है। तू पवित्र है। तू अपने लिये नहीं, दूसरे के लिये भीख माँगने गई थी। आज तो कोई जवानी ही चाहता है। फल को कोई फिर भी माँग बैठा, तो क्या तू दृष्ट जायेगी !

भवानक यहाँ हो रही थी। कबीर ने लोई को टाट थोड़ा कर फेंके पर बिठा लिया था।

जब वे सेठ के घर पहुँचे तो कबीर द्वार पर बठ गया । लोई ने द्वार खड़ खड़ाया । सेठ अंधा और पागल था । वासना चिल्ला उठी : लोई ।

लोई दृढ़ खड़ी रही । कहा : मोल चुकाने आई हूँ । वचन दे गई थी न सेठ ने देखा । लोई निर्भय खड़ी थी । वह समझा नहीं । भबराया भी उसने कहा : तू भीगी नहीं लोई । बाहर तो मूसलधार पानी गिर रहा है 'मुझे मेरा कंत कंधे पर बिठाकर लाया है ।'

सेठ ने सुना तो चार हाथ पीछे हट गया । वह घुटनों में मुँह छिपाक बैठ गया और रोने लगा । लोई पास चली गई । कबीर ने सुना । सेठ : कहा : लोई तू मेरी माँ है, तू मेरी माँ है ।

कबीर द्वार पर आ गया और उसने कहा :

पहले यह मन काग था
करता जीवन घात
अब तो मन हँसा भया
मौती चुँगि चुँगि खात ।
कविरा मन परबत हता
अब मैं पाया कानि
टाँकी लागी सव्द की
निकसी कंज्ज खानि ।

दूसरे दिन काशी में चर्चा चल पड़ी । नगर का प्रसिद्ध सेठ आया और कबीर के सामने उसने साष्टांग दण्डवत की । और पाँव पकड़ कहा : गुरु मेरा प्रायश्चित्त बताओ ।

कबीर ने मुस्कराकर कहा : प्रायश्चित्त एक ही है रे धनी । करेगा !
'आज्ञा दो गुरु !'

‘माया तेरी शत्रु है । उसका दास नहीं बन । खाली राम राम करने से लाभ नहीं होगा ।

जो जल वाड़े नांव में
पर मैं वाड़ें दाम ।
दोऊ हाथ जलीचिये
यही सज्जन को वाम ।

‘बा ! दीनों की सेवा कर ! नारी का सम्मान कर !’

सेठ पाँव छूकर चला गया ।

लौरे ने देखा तो कबीर के चरणों पर चिर धर कर प्रणाम किया । कबीर

ने कहा—

सेज विछावै मुन्दरी
घन्तर परदा होय ।
तन सोपि मन दे नही
सदा सुहागिन होय !

कबीर अचेष्टावस्था में खर रहा था । जीवन भर मेहनत मजदूरी करने से उसके शरीर में श्रम भी बल था । माथे पर बाल कुछ सफेद हो गये थे । लोरे के कानों पर लट्टे सफेद हो गई थीं । शीर कमाल तब तक था ।

दरबार भरा हुआ था । सारी काशी एकट्ठी होगई थी । मुल्तान सिकन्दर लोदी सोने के सिंहासन पर बैठा था ।

सामने कबीर लोदे की जंजीरों में बैधा मुस्करा रहा था । अचंख्य प्रजा दरदरा रही थी ।

मीरसुंशी के कह चुकने पर निस्तन्धता छा गई । अपनी नुकीली नाक पर तारा की तरह अपनी गिद्ध जैसी आँसु उठा कर मुल्तान ने स्वर से

पूछा : यह सच है जुलाहे कि तूने रियाया को भड़काया ?

लोदी हिंदी बोल रहा था ।

'मैंने नहीं भड़काया सुल्तान ।' कबीर ने उत्तर दिया । 'यह शलत है !'

काज़ी उठा । उसने कहा : हुज़ूर मुझे इजाजत हो तो मैं अर्ज करूँ ?

'कहो !' सिकन्दर ने कड़कती आवाज़ में कहा ।

लोई ने देखा । कमाल ने सुना । काज़ी ने कहा : यह जुलाहा लोगों से कहता है कि नमाज़ी भूँटे हैं । मुसलमान हत्या करते हैं । गाय काटते हैं । यह मुसलमानों के खिलाफ नफरत पैदा करता है ।

सिकन्दर ने गरज कर कहा : सुनता है ?

तब कबीर ने हाथ उठाया । उसके हाथ में बंधी लोहे की शृंखला भन-भना उठी । उसने कहा : मैं किसी से नफरत नहीं करता । हिंदुओं में वर्णाश्रम व्यवस्था ने इन्सान को इन्सान से बाँट दिया है । उनके अवतारों की कथाओं ने जनता को रूढ़ियों में फाँस लिया है । मूर्ति पूजा के नाम पर मंदिरों में लूट मच्ची हुई है । जैनी और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते, पर उनके आचरण किसी भी तरह हिंदुओं से कम रूढ़िवादी नहीं हैं । जोगी संसार में रह कर भी दूसरों की कमाई पर रहते हैं । एक दिन मैं भी उनकी रहस्य की बातों से, हठयोग से प्रभावित हुआ था । पर वह सहज नहीं था, उसका अन्त पाषंड ही है । मैं इन सबको नहीं मानता । लोग ~~मुझे~~ द्वीप का धर्म सनातन है, वेद भगवान का बनाया है, मैं इसे भी नहीं मानता । वे सब कहते हैं मैं नीच हूँ और मुसलमानों का दोस्त हूँ । और तुम मुझे मुसलमानों का दुश्मन समझते हो । तो सुनो । मैं तुम्हारी तेज़ से डरता नहीं । क्या तुम्हारा मजहब यही है कि तुम वेकुसूर जानवरों को काट कर खाओ और रोजे नमाज़ का ढोंग करो ।

सिकन्दर चिल्लाया : जुलाहे !!

कबीर ने कहा : तू मुझे रोक लेगा सुल्तान ? विधाता भी मुझे नहीं रोक सका । मेरा सहारा बचाने वाला है । अगर ब्राह्मणों, जैनों, जोगियों, शाक्तों, बौद्धों और कापालिकों का बस चलता तो वे कभी का मुझे मार देते । पर मेरे साथ यह थे.....

कबीर ने गरीबों को मीढ़ की तरफ हाथ उठाया और कहा : इन्होंने मुझे बचाया । परतों, मटाधीरों के गुनें मुझे मार नहीं सके । और तुम मुहम्मद का नाम लेते हो, हुकूम का खतम करने के नाम पर मंदिरों का सोना लूटने के लिये मजहद की आड़ लेते हो ! तुम्हारे मुल्ला तुम्हें खींच कर हिमायत के लिये लाये हैं ! हम गरीब थे, हैं । जैसे हिंदू गजा थे, वैसे तुम हो । और तुम लोगों को बहका कर मुसलमान बनाते हो । उरुते क्या फरक पड़ता है । तुम सब इन्सान को इन्सान नहीं ग्ने देना चाहते * * *

सिकंदर ने मुना । मीढ़ चिल्लाईं: कबीर की * * *

जय ! * * *

कबीर की * * *

जय !

उस अपराजित साहस को देखकर सिकंदर लोटी मन ही मन बर्ग गया । उसने काज़ी की ओर देखा ।

काज़ी ने कहा : हुज़ूर ! यह धागी है ।

‘जानता है इसका नतीजा !’ एक मुल्ला चिल्लाया ।

कबीर ने मुड़कर कहा: कौनसा नतीजा है जिससे डरकर मैं झूठ बोलूँ ?

लोई ने चिल्ला कर कहा : कंत अमर है । तू गरीबों की आन है ।

सिकंदर मुड़ा । पूछा : कौन है यह औरत ?

‘हुज़ूर,’ काज़ी ने कहा : ‘इसकी बीबी है !’

सिकंदर के माये: ~~.....~~ गये ।

लोई कह रही थी : मार डालो । डराते किमे हो ! अरे इस देश की घूल में जाने कितने हुकूमत करने वाले सिंग पटक कर मर गये । पर गरीब अमर हैं । मेहनत और ईमान की कमाई खाने वाला कभी नहीं मर सकता ।

कबीर के होठों पर मुक्कराहट आ गई । यह चिल्लाया : माइयो ! कायर की मौत मरने से तो बहादुर की मौत मग्ना अच्छा है । हमारे देश में वही अपना है जो आदमी की आजादी के लिये खड़ा है । यह मुसलमान ही नहीं, इंसान और इंसान के बीच दीवार खड़े करने वाले परिद्वत, जोगी, जती, बैन, बौद्ध, शाक्त, सब विदेशी हैं । वे धरम के नाम पर ऊँच नीच बना कर

लूटते हैं। मैं वह नहीं हूँ जो इस देश के ऊँच नीच वाले कायदों को मान कर सिर झुकादूँ और उसे अपना हिंदू धर्म कह कर इस्लाम को विदेशी कहदूँ। मेरे लिए तो यह सब ग़लत है। यह सब धोखा है। यह सब जड़ता और घृणा पर चलने वाले सिद्धांत हैं, जो गरीबों को गरीब और लुटेरों को लुटेरा और हरामखोर रखते हैं।

कोलाहल होने लगा। सुल्तान क्रोध से व्याकुल हो उठा। उसने चिल्ला कर कहा : जुलाहे ! तेरी मौत तेरे सिर पर मंडरा रही है।

कबीर ने हँस कर कहा : सुल्तान ! पलट कर देख ! कोई इस धरती को ले गया है ! ! इस धन और हुक्मत के हाथों तू बिक चुका है। अब तू नहीं बोलता, तेरा झूठा अहंकार बोलता है। मैं मरूँगा जरूर, कल नहीं अभी, पर तू तो अमर ही रहेगा न ? नादान—

माली आवत देखि कर

कलियन करी पुकार

फूले फूले चुन लिये

काल्हि हमारी वार ।

तू मुझे डराता है। तेरे यह सिपाही मुझे क्या मार सकते हैं ! मेरा मैं तो कभी का छूट गया, जब डरने वाला ही नहीं रहा, तो फिर मुझे किसका डर है ?

भीड़ चिल्लाई : जय कबीर !

उस भीड़ में मुसलमान भी थे, लेकिन ग़राब

काज़ी ने कहा 'हुजूर, मुसलमान भी इसके साथ हैं !'

सिकंदर लोदी खड़ा हो गया। और सामने कबीर बंधा खड़ा था। सोने के सिंहासन पर खड़े हुए, खड़खड़ाते शस्त्रों से सुरक्षित लोदी के चितित माथे पर बल पड़ गये थे। कबीर उनके बीच में लोहे की जंजीरों में बंधा भी मुस्करा रहा था। कमाल ने देखा लोई निडर थी, जैसे वह आज कबीर पर न्यौछावर थी।

लोई चिल्लाई : सुल्तान ! तेरा पाप तुझे डरा रहा है। देख ! तेरे सामने वह किस शान से खड़ा है। सत्य के तेज ने उसे आग बना दिया है और तू

सोने के सिंहासन पर चढ़कर भी मिट्टी ही बना रहा ।।

सिकन्दर सह नहीं सका । उसने हंगित किया । शीर देखते ही देखते मस्त हाथी छोड़ दिया गया । भीड़ काँप गई । कबीर निर्द्वन्द्व खड़ा रहा ।

हाथी चिंघाड़ कर बढ़ने लगा ।

कमाल आगे बढ़ा । उसी समय सिकन्दर लोदी धरौं उठा शीर सिंहासन पर लड़खड़ा कर बैठ गया । भीड़ विचलित हो उठी थी । लोई भपटी शीर हाथी ने सूएड में लपेट कर फेंक दिया । यह कबीर के चरणों पर अचेत सी गिर गई । भीड़ नहीं रुकी । सैनिकों से युद्ध होने लगा । उस भीड़ में गरीब थे, वे हिंदू भी थे, मसलमान भी, जुगी भी, जुलाहे भी ।

काजी ने कहा : हुजूर मुसलमान मसलमान से लड़ रहा है ।

पर भीड़ बढ़ती ही गई । मुल्तान शीर सेना पीछे रह गये । कबीर शीर कबीर के चरणों पर लोई को गरीबों की सौ सौ गज मोटी दीवारों ने अमेघ कवच की भांति घेर लिया ।

सिकन्दर क्रुद्ध सा लौट गया । आज वह हार गया था । बगावत को कुचलने के लिये मुंह खोलने के पहले उसे खेमे में खबर मिली कि चंदवार ठाकुरों ने भयानक हमला किया है, शीर किसी भी क्षण लोदी नेस्तनाबूद हो सकते हैं । उसने उसी वक्त पौर्णों को लौटने का हुक्म दे दिया ।

भीड़ खड़ी भी कमाल कह रहा हूँ । मुनते ही ! मैं कमाल पुकार र कर कह रहा हूँ । लोग कहते हैं कबीर को चमत्कारों ने बचा लिया । पर सच्चाई नहीं कहते कि उसे काशी की जनता ने जान दथेली पर रखकर बचा लिया ।

मैंने व्याकुल स्वर से पुकारा : माँ ! श्रमों ! तु चली गई ! पर दादा शांत थे । उनके मुख पर दिव्याभा थी । उस असेख्य भीड़ में ये सहसा गा उठे—

पतिवरता पति को भजे

और न आन सहाय

सिंह वचाः जो लँघना
ती भी घास न खाय ।
सती विचारी सत किया
कांटों सेज विछाय
लै सूती पिय आपना
चहुँ दिसि अग्नि लगाय ।
चढी अखाड़े सुंदरी
माँडा पिउ सों खेल
दीपक जोया ज्ञान का
काम जरै ज्यों तेल ।

भीड़ रौने लगी । मैं तो आँखें टंक कर बैठ गया । तब पिता ने विभोर
करुण से गाया जैसे वे अपने आपको भूल गये थे—

हूँ वारी मुख फेरि पियारे
करवट दे मोहें काहे को मारे ।
करवट भला न करवट तेरी
लाग गरे सुन विनती मेरी
हम तुम बीच भया नहि कोई
तुमहि सो कँत नारि हम सोई
कहत कबीर सुनो न ~~...~~
अब तुम्हरी परतीत * ~~...~~ हाई ।

भीड़ का विह्वल हाहाकार, और फिर विद्वोभ का फूटता हुआ ज्वार, सब
कभी जयजयकार बन जाते, कभी धुँआधार कोलाहल ।

मैंने देखा । उस क्षण वह ज्ञानी कबीर, सुल्तान को चुनौती देने वाला
कबीर, अत्यन्त तन्मय दिखाई दे रहा था ।

मैंने कहा दादा : अम्माँ चली गई ।

*बच्चा ।

× विश्वास ।

'नहीं बेठा ! वह तो कबीर बन गई । अब कबीर चला गया ।' पिता ने कहा ।

लोग उभरे उठाने आये । वे जुलूस निकालना चाहते थे । पर पिता ने कहा : नहीं । लोई को मैं लाया था, मैं ही ले जाऊँगा क्योंकि वह आज मेरे भीतर समा गई है—

सूरा के तो सिर नहीं
दाता के घन नाहि
पतिव्रता के तन नहीं
सुरति वसें पिउ माहि....

और पिता ने लोई को हाथों पर उठा लिया । वे आगे बढ़े और पुकार उठे—गाओ ! आज लोई के लिये गाओगे नहीं ?

और हजारों की भीड़ शमशान की ओर गाती हुई बढ़ चली—

ऐरी घूँघट के पट गोल
तोहे पिया मिलेंगे.....

उस समय मुझे लगा था कि कबीर बैठा मनुष्य तब तक इस देश में हुआ ही नहीं था, वह कैसा नया मनुष्य था, अरराबित, अनिध, महान निष्कलंक.....

और भीड़ गाती  गाती जा रही थी....

सिंह वचाँ जो लँघना
तौ भी घास न खाय ।
सती विचारी सत किया
कांटों सेज विछाय
लै सूती पिय आपना
चहुँ दिसि अग्नि लगाय ।
चढ़ी अखाड़े सुंदरी
माँड़ा पिउ साँ खेल
दीपक जोया ज्ञान का
काम जरै ज्यों तेल ।

भीड़ रौने लगी । मैं तो आँखें टंक कर बैठ गया । तब पिता ने विभोर
कण्ठ से गाया जैसे वे अपने आपको भूल गये थे—

हूँ वारी मुख फेरि पियारे
करवट दे मोहें काहे को मारे ।
करवट भला न करवट तेरी
लाग गरे सुन विनती मेरी
हम तुम बीच भया नहि कोई
तुमहिं सो कँत नारि हम सोई
कहत कबीर सुनो न
अब तुम्हरी परतीत * न हाई ।

भीड़ का विह्वल हाहाकार, और फिर विज्ञोभ का फूटता हुआ
कभी जयजयकार बन जाते, कभी धुआधार कोलाहल ।

मैंने देखा । उस क्षण वह शानी कबीर, सुल्तान को चुनौती देने वाला
कबीर, अत्यन्त तन्मय दिखाई दे रहा था ।

मैंने कहा दादा : अम्माँ चली गई ।

*बच्चा ।

X विश्वास ।

'नहीं देटा ! वह तो कबीर बन गई ! अब कबीर चला गया !' पिता
 कहा ।

लोग उसे उठाने आये । वे झुलूस निकालना चाहते थे । पर पिता ने
 हा : नहीं । लोई को मैं लाया था, मैं ही ले जाऊँगा क्योंकि वह आज
 मेरी मीतर समा गई है—

सूरा के तो सिर नहीं
 दाता के घन नाहि
 पतिवरता के तन नहीं
 सुरति वसै पिउ माहिं....

श्रीर पिता ने लोई को हाथों पर उठा लिया । वे आगे बढ़े श्रीर पुकार
 टे—गाओ ! आज लोई के लिये गाओगे नहीं ?

श्रीर हजारों की भीड़ शमशान की ओर गाती हुई बढ़ चली—

ऐरी घूँघट के पट खोल
 तोहे पिया मिलेंगे....

उस समय मुझे लगा था कि कबीर जैसा मनुष्य तब तक इस देश में
 आ ही नहीं था, वह कैसा नया मनुष्य था, अपराजित, अनिघ, महान
 नष्कलंरु.....

श्रीर भीड़ गाती  गाती जा रही थी....